तृतीय अध्याय

कुसुम अन्सल के उपन्यासों में चित्रित नारी जीवन की समस्याएँ

1. अर्थाभाव की समस्या
2. आर्थिक स्वतंत्रता की समस्या
3. विवाह से उत्पन्न समस्याएँ
   - × अंतर्जातीय प्रेम विवाह की समस्या
   - × अविवाह से उत्पन्न समस्या
   - × विवाहोपरान्त पति पत्नी तान-तनाव की समस्या
   - × असफल विवाह की समस्या
   - × असुंदरता के कारण निर्मित विवाह समस्या
   - × दहेज की समस्या

   निष्कर्ष
4. यौन-संबंधों से निर्मित समस्याएँ
   - × नितान्त वासनात्मक प्रेम से निर्मित यौन-संबंध
   - × केवल प्रेम के लिए यौन-संबंध
   - × स्वार्थ के लिए व्यवसायोकृत यौन-संबंध
   - × यौन-वर्जन की समस्या
   - × अवैध-यौन संबंध की समस्या
5. नशापान की समस्या
6. अकेलेपन की समस्या
7. नारी शोषण की समस्या
8. संयुक्त परिवार की समस्या
9. अंधविश्वास की समस्या

   अन्य समस्याएँ

   निष्कर्ष

अध्याय : 3

कुसुम अंसल के हिन्दी उपन्यासों में चित्रित नारी जीवन की समस्याएँ

कुसुम अन्सल के उपन्यासों में चित्रित समस्याओं पर विचार करने के पहले हमें भारतीय नारी जीवन की समस्याओं पर सोचना आवश्यक है।

भारतीय पुरूष प्रधान संस्कृति में नारी को गौण स्थान दिया गया है। भारतीय महिलाओं की स्थिति पश्चिमी महिलाओं के मायने में बहुत भिन्न है। आज़ादी के संघर्ष ने नारी को घर से बाहर जाने का अवसर प्रदान करके दिया। आज़ादी के पश्चात उसे वैधानिक समानाधिकारों की प्राप्ति हुई फलस्वरूप ग्रामीण एवं खेतीहर नारियों को भी परिवर्तन की अच्छी पृष्ठभूमि मिली। इतना होने पर भी भारत की औसत नारी आज भी सामाजिक दृष्टि से अधिक पिछडी नज़र आ रही है। वह अपने हितों और हक्कों से अनभिज्ञ है या हित और स्वार्थ में नये प्राप्त हक्कों का दुरूपयोग भी करने लगी है। महिला वर्ष 1975 से उसे अपने हक्कों और हितों की अच्छी पहचान हो गयी है। परन्तु आज भी शिक्षित-अर्धशिक्षित, अशिक्षित नारी पुरूष के संरक्षण में अपना हित समझती है। पुरूष की समर्पिता बनकर वह सुख-संतोष पाती है। "नारी मुक्ति आन्दोलन एवं अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष 1975 के बाद भी आज भारतीय नारी सही हालत में आज़ाद नहीं है । इसी के परिणाम स्वरूप नारी जीवन की कई समस्याएँ हमारे सामने उभरकर आयी हैं। नारी जीवन की मजबूरी, आर्थिक विपन्नता, विशिष्ट मनोवृत्ति, और पुरूष के रक्षाकवच के कारण नारी के सामने आज भी अनेक समस्याएँ खडी हो रही हैं। विधवा नारी, वेश्या नारी, फँसाई गयी नारी, नौकरी पेशा करने वाली नारी आदि नारी के विभिन्न रूप नारी जीवन की कई समस्याएँ हमारे सामने पेश कर रहे हैं।"[1]

सन 1995 के बीजिंग में सम्पन्न जागतिक महिला परिषद ने महिलाओं की समस्याओं पर सोचा है। कुसुम अन्सल के उपन्यासों में चित्रित समस्याओं के बारे में सोचते हुए एक बात स्पष्ट होती है कि कुसुमजी व्यक्तिवादी महिला उपन्यास लेखिका है। उन्होंने अपने उपन्यासों द्वारा नारी जीवन की जो समस्याएँ प्रस्तुत की है, इस पर हल भी ढूंढे हैं।

आधुनिक युग में नारी के जीवन मूल्यों में विशेष रूप से परिवर्तन होने लगा है। अतः उपन्यासकारों ने अपनी नज़र उसकी तरफ घुमायी। हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में प्रेमचंदजी का आगमन नारी जीवन मूल्यों को वाणी देने में समक्ष बना। अतः पर्दे में कैद पग-पग पर लांछित, पीड़ित, शोषित नारी को प्रथमतया मानवी रूप में देखा गया। अब तक देवी या दासी बनकर उसे चार दीवारों में बन्द कर रखा था। पर प्रेमचंदजी ने उसका मूक क्रंदन सुना और समाज को उसकी स्थिति से परिचित कराया। स्वतंत्रता आंदोलन के बहाने महात्मा गांधी ने उसे घर से बाहर कदम रखने के लिए प्रेरित किया, तब से नारी जीवन में परिवर्तन की नयी लहर दौडी। नारी स्थिति ने परिवर्तन की गति इसी आंदोलन से तेज हुई। परिवर्तनशील परिस्थिति तथा विविध विचारधाराओं ने उसे अधिकाधिक प्रेरित किया।

"नारी केवल उपभोग की वस्तु नहीं है और न ही वह मनोरंजन का विषय है। वह पुरूष की सहभागिनी एवं यथार्थ अर्द्धांगिनी है।"[2] साधारणतयः पारिवारिक परिवेश में प्रविष्ट और नौकरी पेशा में प्रविष्ट नारियों की समस्याएँ आदि को साठोत्तरी कालखंड में वाणी मिली है। स्त्री-पुरूष संबंधों को लेकर नारियों के सामने अधिकाधिक समस्याओं का निर्माण हो रहा हैं।

कुसुम अंसल ने "उदास आँखें", "नींव का पत्थर", "एक और पंचवटी", "उस तक", "अपनी अपनी यात्रा", "उसकी पंचवटी", "रेखाकृति" आदि उपन्यास लिखें। परन्तु हमने केवल उनके "उसतक" 1979, "अपनी अपनी यात्रा" 1981, "एक और पंचवटी" 1985 इन तीनों उपन्यासों को प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध का विषय बनाया है और इन उपन्यासों में चित्रित समस्याओं पर प्रकाश डालने का

प्रयत्न किया है। इन तीन आलोच्य उपन्यासों में उन्होंने अर्थाभाव की समस्या, विवाह से संबंधित समस्या, यौन-संबंधों से निर्मित समस्या, नशापान की समस्या, नारी शोषण की समस्या, संयुक्त परिवार की समस्या, अंधविश्वास की समस्या आदि कई समस्याओं का चित्रण किया है परंतु समस्याओं का विश्लेषण करना कुसुमजी के उपन्यासों का उद्देश्य नहीं है, बल्कि समस्याओं के समाधान को ढूँढना कुसुमजी का प्रमुख लक्ष्य है, इसलिए इनके आलोच्य उपन्यासों में जितनी समस्याएँ आयी है, इतनी गहराई से नहीं उतर पाई हैं।

कुसुमजी ने पति-पत्नी संबंधों, पति-पत्नी संबंधो के बदलते अर्थ, निजी व्यक्तित्व की चाह, दाम्पत्य-संबंधों में ऊबकाई, संशयग्रस्त-दाम्पत्य जीवन, विवाह-विच्छेद, निम्नवर्ग में दाम्पत्य संबंध, विवाहोत्तर संबंध, विवाहपूर्व प्रेमसंबंध, प्रेम और देहाकर्षण, भावनात्मक प्रेम, पति-पत्नी के विवाहोत्तर संबंध, स्त्री-पुरूषों में मैत्री संबंध, अविवाहित नारी की स्थिति, पुरूष द्वारा नारी का शोषण आदि कई पहलुओं पर आलोच्य उपन्यासों के द्वारा प्रकाश डालने का प्रयास किया है। उनके उपन्यासों में अविवाहित, विवाहित, नारी की समस्याओं को वाणी मिली हैं।

कुसुम अंसल ने अपने उपन्यासों में नारी जीवन की समस्याओं पर कहाँ तक चिन्तन किया है, इस पर हम अधिकाधिक यहाँ सोचेंगे। कुसुमजी महिला उपन्यास लेखिका होने के कारण उनके उपन्यासों में अधिकतर नारी जीवन की समस्याओं पर ही चिंतन किया गया है।

अर्थाभाव की समस्या

स्वतंत्रता के पश्चात् देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में जितना तेजी से परिवर्तन आया है, इससे नारी को घर से बाहर निकलने, शिक्षा प्राप्त करने तथा स्वयं को अभिव्यक्त करने के विपुल अवसर मिले। बढ़ती महँगाई के कारण परिवार की आवश्यकताएँ प्रायः एक व्यक्ति की आय से पूरी नहीं हो पाती। इस स्थिति में आवश्यकताएँ महसूस होने लगी एक अन्य अर्जक सदस्य की। वह सदस्य पुरूष हो, ऐसा अनिवार्य नहीं, हालांकि स्वतंत्रता से पूर्व प्रायः यही

समझा जाता था। राजनीतिक एवं सांस्कृतिक चेतना तथा बढ़ते हुए आर्थिक दबाव ने नारी तथा समूचे समाज के चिन्तन को परिवर्तित किया है। यही कारण है कि युवा पीढ़ी के साथ-साथ पुरानी पीढ़ी भी नारी के कामकाजी होने की पक्षधर रही। कामकाज को लेकर किसी पीढ़ी की अपनी प्राथमिकताएँ या शर्तें नहीं है। जो भी नौकरी मिले, सहज भाव से स्वीकार कर लो। यह सिद्धान्त उन पर प्रायः हावी रहता है। इसलिए विवाहित, अविवाहित महिलाएँ तथा नवजात शिशुओं की माताएँ भी कमर कसकर पुरूषों की अर्जन दुनिया में आ खडी हुई। स्पष्ट है कि महिलाओं के अर्थोपार्जन के मूल में उनकी और परिवार की सहमति न्यूनाधिक मात्रा में अवश्य रहती है।

कुसुम अंसल के "उस तक" 1979 उपन्यास में एक निम्न-मध्य-वर्ग में उत्पन्न एक युवती मुक्ता के माध्यम से तथा उसके परिवार के माध्यम से इस समस्या पर सोचा गया है।

"उस तक" 1979 की नायिका मुक्ता ने पूरा एक मास "निगम एण्ड कम्पनी" में काम करने के उपरान्त भी उसे पहली बार साढ़े तीन सौ रूपये वेतन दिया गया। उसे मालूम नहीं था कि परिस्थिति के साथ उसे इतना समझौता करना पडेगा। वह अधिक उत्साही थी। बैंक में सौ रूपये जमा किए और मिस्टर डे से कह आयी थी कि बस अब हर महीने इसी प्रकार आपके पैसे लौटाती जाऊंगी। दूसरे महिने में भी मुक्ता उसी कम्पनी में काम करने लगी। कुछ महीने बितने के उपरान्त और उसका वेतन साढ़े तीन सौ रूपये होने के कारण उसमें कमरे का तथा बस का किराया और पूरे महिने का खर्च। इससे वह नई साडी भी खरीदने के लिए असमर्थ हो जाती। कभी-कभी उसे सस्ती सूती साडी भी पहननी पडती थी। उसकी सस्ती सूती साड़ियों को कभी-कभी बॉस सरसराती नज़रों से देख जाता। एक दिन तो लालपाड की मोटी बंगाली धोती देखकर उसने कहा भी था "मिस मुक्ता क्या तुम बंगाली हो।" मुक्ता के पिता अपने बेटी को कॉलेज में भेजना चाहते थे। उन्हें लगता था कि आगे चलकर वह आत्मनिर्भर बन जाए। उनके आरमान पूरे होंगे क्योंकि पहली दो बेटियों ने सिर्फ दसवीं कक्षा तक पढ़ाई पूरी की थी।

लेकिन माँ का मन नहीं करता था कि मुक्ता कॉलेज में जाकर पढ़कर कुछ बनेगी। बाबूजी ने माँ के विपरित उसे कॉलेज में पढ़ने के लिए भेजा था। लेकिन पिताजी ने उसके हृदय में इतना मनोबल दृढ किया था कि "स्नेह का एक क्षीण सम्बल उसे इतना बल दे गया था कि वह अपने पूरे अभिशप्त जीवन पर सफलताओं का सेतु बनाती चली गयी।"[3]

उच्च शिक्षा के लिए मुक्ता माँ के विपरीत कॉलेज में दाखिल हुई। उसे नई सहेली नीना से अधिक परिचय हुआ। उसके घर में उसका तथा मुक्ता का भी आदर स्नेह किया जाता था। जिस जिन्दगी को एक बासी रोटी के समान मानने वाली मुक्ता, नीना के साथ रहने के कारण उनके जिंदगी में नयापन आया है। उसे ऐसा लगता है कि "नीना की याद उसी पुरानेपन में ऐसे बसी थी, जैसे पुराने खंडहर में कोई अगरबत्ती जल उठी हो।"[4]

"उस तक" की मुक्ता अर्थाभाव में भी कुछ न कुछ करना चाहती है। जीवन में संघर्ष करती है, टूटती है, आगे बढ़ती है। अभावग्रस्तता के अभिशाप को वहन करती है।

मुक्ता के पिताजी घोर अभाव में पैदा हुए थे। चार-पाँच मील पैदल शहर जाकर पढ़ाई करते थे। टयूशन करके माँ-बाप का भरण-पोषण करते। उन्होंने अभावों में ही अपनी पढ़ाई पूरी की थी। मुक्ता द्वारा नये जूते पाने पर वे कहते हैं - मुक्ता मैं स्कूल नंगे पाँव जाया करता था, जब कभी पैर बहुत जलते थे तो पेडों से बड़े-बड़े पत्ते तोडकर पैरों में बांध लेता था। डॉ॰वाय॰बी॰धुमालजी के मतानुसार - "कुसुमजी ने यहाँ अभावग्रस्त जिंदगी में पलने वाली निम्न-मध्य-वर्ग की कुंठा और संवेदना को चित्रित किया है।"[5]

कुसुम अन्सल के "अपनी-अपनी यात्रा" 1981 में भी इस समस्या की ओर संकेत किया है। प्रशांत सुरेखा का हाथ माँगता है, तब मजबुरी के कारण सुरेखा उसके प्रस्ताव को नकार देती है। प्रशांत को लगता है, "मेरे पिता का तुम्हारे यहाँ नौकरी करना बहुत बड़ा सत्य है, जो मेरे जीवन में कितने ही कॉम्प्लैक्स दे

जाता है।"[6] प्रशांत एक नौकर का लड़का होने के कारण अपनी हैसियत जानता है। जिसके घर में पिताजी नौकरी कर रहे हैं, उस मालिक की बेटी का हाथ माँगना उसे अच्छा नहीं लगता। सुरेखा उसे समझाने की कोशिश करती है। प्रशांत अपने जीवन में यह कॉम्प्लेक्स तुम कभी मत आने देना।

निष्कर्ष

"उसतक" की मुक्ता, मुक्ता के पिताजी, मुक्ता का पूरा परिवार और "अपनी-अपनी यात्रा" का प्रशांत अर्थाभाव से पीड़ित लगते हैं। मुक्ता इस अर्थाभाव से युक्त जिंदगी से संघर्ष करती करती उभर उठना चाहती है और कई पड़ाओं से गुजरते-गुजरते अंत में अर्थ प्राप्त तो करती है, बल्कि टूट भी जाती है। प्रशांत बड़े बाप की बेटी का हाथ माँगने में हिचकिचाता है वह लघुता की ग्रंथि से पीड़ित लगता है। यह लघुता की ग्रंथी अर्थाभाव से ही उसके मन में निर्माण हो चुकी है।

आर्थिक स्वतंत्रता की समस्या

कामकाज के जरिए आर्थिक स्वतंत्रता पाने के मूल में निस्संदेह आर्थिक कारण होता है। साथ ही इसमें सामाजिक, मनोवैज्ञानिक कारण भी सक्रिय रहते हैं इन कारणों में आत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा और परिवार तथा समाज में अपनी अस्मिता की पहचान को लिया जा सकता है। विशिष्ट पहचान बनाने की ललक के मूल में मुख्यतया दो कारण द्रष्टव्य हैं - परिस्थितियों का दबाव तथा दूसरे महिला का व्यक्तिवादी दृष्टिकोन। यहाँ यह उल्लेख कर देना अनिवार्य है कि "आर्थिक स्वतंत्रता के लिए कामकाज करने वाली महिलाओं के सामने धनाभाव होना आवश्यक नहीं। उनमें प्रायः एक रिक्त अथवा असंतोष का भाव होता है।"[7] पारिवारिक माहौल में वे स्वयं को फिट नहीं कर पाती। अतः अपने ढंग से जीवन जीने के लिए उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता अर्जित करना अनिवार्य लगता है।

"अभावग्रस्तता में घुटनशीलता का जन्म होता है। इस हालत में इस वर्ग की नारियाँ तथा युवतियाँ घुटन भरी जिंदगी से तंग आकर स्वतंत्र बनना चाहती है। आर्थिक स्वातंत्र्य की चाह रखती है।"[8] नारियों की इस समस्या पर कुसुम

असंल ने "उस तक" 1979 में मुक्ता के माध्यम से प्रकाश डालने का कार्य किया है। "उसतक" की मुक्ता अर्थाभाव की घुटनशीलता तोड़कर आर्थिक स्वतंत्रता की चाह रखती है। खुद के पावों पर खड़ा रहकर स्वावलंबी जीवन यापन करना चाहती है। होस्टल में जाकर रहती है। फीस माफ करवा लेती है। वह अपने पिताजी से कहती है - "अच्छा बाबूजी अब जा रही हूँ। अब कष्ट नहीं दूंगी आप लोगों को। आशीर्वाद दीजिए कि सफल हो सकूं। अच्छा जीवन बिता सकूं।"[9] स्पष्ट है कि मुक्ता यहाँ आर्थिक स्वतंत्रता की समस्या को पार करना चाहती है। स्वावलंबी बनना चाहती है।

कुसुम अंसल के "एक और पंचवटी" 1985 उपन्यास की नायिका साधवी संयुक्त परिवार में नहीं रहना चाहती है। प्रायः देखा गया है कि शिक्षित महिलाएँ अपने व्यक्तित्व के प्रति अधिक सचेत होती हैं। परिस्थितियों का विश्लेषण करने की क्षमता तथा पुरूषों से होड़ लेने का भाव उनमें आ जाता है। समानता का दावा जहाँ उनके मन में सदियों से पल रहे हीन भाव को किसी सीमा तक दूर करता है, वहीं उनकी सहज कोमलता को भी समाप्त कर देता है। पहले बात-बात पर स्वयं को पुरूष के अनुकूल ढाल लेने की महिलाओं की क्षमता स्वभावगत विशेषता से अधिक परिस्थितिजन्य विवशता थी। घर तथा समाज में पुरूष के सम्बल के बिना वे खडी नहीं हो सकती थी और खडी हो भी जाएँ तो पेट पालने का कोई जरिया उनके पास न था। आज बढ़ती आबादी, शिक्षा, जागृति, आत्मनिर्भरता तथा कामकाज की विपुल संभावनाओं ने नारी के दृष्टिकोन में पर्याप्त परिवर्तन ला दिया है। वह पुरूष को संरक्षक नहीं, मित्र अथवा सीधे रूप में देखना चाहती है। "पुरूष के समान स्वतंत्र और स्वावलम्बी हो जाना उसकी महत्वाकांक्षा बन गया है। यही कारण है कि अर्थाभाव न होते हुए भी अनेक महिलाएँ अर्थोपार्जन करके आर्थिक स्वतंत्रता के साथ नारी स्वतंत्रता की उद्घोषणा भी कर रही है।"[10]

आर्थिक रूप से परिवार के किसी भी पुरूष सदस्य पिता अथवा पति पर निर्भर रहना ऐसी महिलाओं को अपमानजनक लगता है। इसी तथ्य के परिणामस्वरूप साधवी अपने पति यतीन से दूर होने के पश्चात अपने मायके में रहकर एक स्कूल में मास्टरानी बनती है, अपना बोझ आप ढोना चाहती है। जो साधवी उच्च परिवार

में पली थी उसकी यह स्थिति देखकर साधवी के माँ की आँखे गीली होती है परंतु साधवी मात्र इस आपत्ति को स्वीकार करके आर्थिक स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत रहती है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत समस्या में मुक्ता और साधवी की आर्थिक स्वतंत्रता के दो विभिन्न आयाम कुसुमजी ने हमारे सामने रखे हैं। मुक्ता की आर्थिक स्वतंत्रता प्रतिकुलता के घेरे को तोड़ना चाहती है, तो साधवी की आर्थिक स्वतंत्रता स्वतंत्र व्यक्तित्व निर्माण की ललक से युक्त लगती हैं।

विवाह से उत्पन्न समस्याएँ

भारतीय नारी के जीवन में विवाह से उत्पन्न अनेक-सी समस्याओं का समन्वय होता है। वधू परीक्षा की समस्या, दहेज प्रथा की समस्या, प्रेम विवाह की समस्या, पति-पत्नी तान-तनाव की समस्या, अविवाहित नारियों की समस्या, विधवा समस्या आदि अनेक समस्याएँ हैं जो वैवाहिक या अविवाहित नारी के जीवन में उत्पन्न होती है। इनमें से कई समस्याओं पर कुसुम अंसलजी ने गहराई से आलोच्य उपन्यासों में चिंतन किया है।

1· अंतर्जातीय प्रेम विवाह की समस्या

प्रेम एवं विवाह को मोटे रूप से सफल और असफल इन दो प्रकारों के अंतर्गत रख सकते हैं। सफल प्रेम वह है जो विवाह में परिणत हो पाये और विवाहोपरान्त भी बना रहे। ऐसे प्रेम जिसका अन्त विवाह में न हो असफल प्रेम कहा जा सकता है। इन दो प्रकारों के अतिरिक्त कुछ ऐसी नारियाँ भी उपन्यासों में आयी हैं, जो प्रेम करके पत्नीत्व पाने में विश्वास नहीं करती बल्कि वे प्रेमिक ही बनी रहना चाहती है।

अन्तर्जातीय विवाहों को समाज ने अभी भी सहजता से स्वीकार नहीं किया है। अतः ऐसे अधिकांश विवाह प्रेम विवाह ही होते हैं। कभी सुन्दरता तो कभी गुणों से प्रभावित होकर स्त्री-पुरूष के मध्य प्रेम पनपता है। ऐसे प्रेम को जाति अथवा धर्म की दीवारें रोक नहीं पाती और साहसी प्रेमी युगल इन रूकावटों को अनदेखा कर विवाह कर लेते हैं। इस प्रकार के विवाह तब समस्या बनते हैं, जब जाति अथवा धर्म की संकीर्णताओं के कारण ये संबंध टूट जाते हैं या उनमें कटुता आ जाती है।

कुसुम अंसल के "उसतक" 1979 में श्यामली और वीरेन्द्र के अन्तर्जातीय विवाह के माध्यम से कुसुमजी ने इस समस्या पर चिंतन किया है। श्यामली और वीरेन्द्र रंगमंच से संबंधित हैं। श्यामली का बंगाली और वीरेन्द्र का पंजाबी होना, श्यामली के ताई के भतिजे द्वारा श्यामली से विवाह करने की जिद पकड़ना, उसके साथ विवाह करना श्यामली को अच्छा नहीं लगता, श्यामली द्वारा ताई के भतिजे की उपेक्षा करना, ताई द्वारा माँ पर और माँ द्वारा श्यामली पर दबाव डालना, श्यामली का खाना-पीना हराम होना, ताई के भतिजे के साथ श्यामली की सगाई होना, सगाई के बाद श्यामली की जेठाई माँ और भाई द्वारा श्यामली को रोकथाम लगाना, श्यामली द्वारा एक प्रसिद्ध नाटक में वीरेन्द्र के दृश्यों में वीरेन्द्र को बार-बार अलिंगन देते रहना, जेठाई माँ द्वारा एक दिन उसका नाटक देखना, श्यामली का जानबूझकर बार-बार वीरेन्द्र को अलिंगन देते रहना, इसे देखकर जेठाई माँ का कुद्ध होकर कहना - "बहुत छूट मिल गयी है, माँ के हाथ से निकल गयी है छोकरी, सारा दिन उछल-कूद श्याम को ये नाटक-ऊटक कुछ और काम नहीं है। शरम हया ताक पर धर दी है, तूने। भले घर की लड़की है। पराये मर्द के

साथ हाथ पकड़ कैसा मटक-मटककर बोलती थी।"[11] इस पर श्यामली जेठाई माँ को समझाती हुई कहती है - "जेठाई माँ, क्या बोले जा रही हो। वह तो आर्ट है, कला है, नाटक है। वह सब कुछ ऐसे कहना होता है जैसे हो, पर सच तो वह होता नहीं है।"[12]

इस घटना के उपरान्त जेठाई माँ उसे ताने मारने लगी, उसकी उपेक्षा करने लगी। उस पंजाबी से श्यामली का सही प्यार है, ऐसा समझ बैठी। श्यामली वीरेन्द्र के फ्लेट पर जाकर कहती है - "वीरेन्द्र क्या तुम मुझसे शादी कर सकते हो ? अभी इसी समय मैं सब कुछ छोड़कर तुम तक आ गई हूँ।"[13] इस परिस्थिति से वीरेन्द्र हतप्रभ हुआ। उसने भी इस बात पर इसके पहले कभी विचार नहीं किया था। आज वह प्रवाह में आकर पास के घर से फोन करके मित्रों को बुलाया। सभी ने उसे साथ दिया। सुबह के आठ बजते-न-बजते रंगमंच के रिहर्सल रूम में असली पंडित बुलाकर श्यामली वीरेन्द्र की शादी उन सबने करा डाली। श्यामली के पिता, माँ, जेठाई माँ जब तक उन्हें खोजने पहुँचे तब तक श्यामली के माँग में सिंदूर भरे सीधी-सादी वेशभूषा में वीरेन्द्र की बगल में बैठी थी। मित्र मंडली मिठाई फल खा रहे थे। इससे जेठाई माँ क्रुद्ध हुई। वह धमकती हुई चली गयी। आगे वह दो बेटे की माँ बनी।

(ब) <u>अविवाह से उत्पन्न समस्या</u> : कुसुम अंसलजी ने "उसतक" 1979 में आंतरजातीय प्रेम विवाह की समस्या के साथ-साथ अविवाहित "मुक्ता" की समस्या पर भी चिंतन किया है। उषा-विद्या बहनों के द्वारा मुक्ता को शादी करने की सलाह देना, माता-पिताजी के चल बसने पर अब मुक्ता का अकेली अविवाहित रहना उन्हें अच्छा न लगना, इन दो बहनों द्वारा माँ-बाप के कहने पर विवाह करना, मुक्ता का मात्र विवाह करने से इन्कार करना, गृहस्थी जमाने का विचार उसके मन में न आना, दोनों बहनों द्वारा मुक्ता को कहना, "खैर अभी भी तू हमें अपना माने तो हम तेरी बात कहीं चलाएं।"[14] मुक्ता मन-ही-मन उनकी आज की सहानुभूति के गिरफ्त में आती जा रही थी। विद्या बहन कह उठी - "तू

कहे तो कहीं बात करें।"[15] मुक्ता के अविवाहित रहने के पीछे उसकी मानसिकता है यह यहाँ स्पष्ट होता है। कुसुम अंसल के "अपनी-अपनी यात्रा" में सुरेखा के रूप में अविवाह की समस्या के दर्शन होते हैं।

(क) विवाहोपरान्त पति-पत्नी तान-तनाव की समस्या :- कुसुम अंसल के "एक और पंचवटी" 1985 में इस समस्या का चित्रण हुआ है। विवाहोपरान्त आनेवाली नौबत के कारण साधवी को नौकरी करनी पडना, मिड़ल स्कूल के अध्यापक की करने पर उसे प्रतिमास पाँच सौ रूपये तनख्वा मिलना, अतीत में उसके द्वारा अपने ड्राइवर को तनखा रूपये पाँच सौ दिया जाना, पाच सो रूपये माँ के हाथ रखने पर उसका रोना, माताजी का उसके दुर्दिन पर रोते रहना, सामान्य भूल की सजा के रूप में साधवी का जीवन उद्ध्वसत होना आदि घटनाएँ साधवी के तनावपूर्ण वैवाहिक जीवन पर प्रकाश डालती है। उसकी माँ रोते-रोते कहती है - "आज अपनी बेटी दूसरों की मोहताज बनी है। इससे तो छोटे घर में ब्याहती मेरी बच्ची को कद्र तो करते, सुख से तो रहती ... सच पैसे से कोई बड़ा नही होता ... वह मेरी बेटी को पहचानने में चुक गये।"[16] ससुराल वाले लोगों की झूठी शान शौकत के कारण यह सब सहना पड़ा है। पति आत्मनिर्भर न होने के कारण तथा संयुक्त परिवार के कारण साधवी का शोषण हो हो चुका है। नवीन के मित्र कह रहे थे - "पागल थी वो, उसे दूसरी शादी कर लेनी चाहिए थी। जन्म तो एक ही बार मिलता हे, उसे क्यों दुखों के हवालें कर दिया जाए।"[17]

साधवी को मित्रों द्वारा दूसरा विवाह करने की सलाह देना, समाज की उपेक्षा के लिए अकेला न रहने की सूचना चुन्नू मित्र द्वारा देना, दुनिया के साथ रहकर प्रगति करने की सलाह देना, दैहिक दुःखों से ऊपर उठने को कहना आदि घटनाएँ साधवी के तनावपूर्ण दाम्पत्य जीवन की गवाही लगती है। चुन्नू..... कहता है - ठीक है अगर तुझे ऐसी कोई कम उम्र लड़की मिले जो विधवा हो, हो सकता है उसके दो-एक बच्चे हो, तो क्या तू उससे शादी कर लेगा ? फिर बीरेन कहता - हाँ क्यों नहीं ? क्या हर्ज है इसमें ? यदि उसकी थोडी-सी उम्र किसी दूसरे पुरूष के साथ व्यतीत हुई वह उसकी पत्नी बनी तो क्या हुआ ? "अब जब वह पुरूष नहीं रहा वह किसी की भी पत्नी रही तो क्या हुआ ? हम लोगों को चाहिए ऐसी लड़कियों को अपनायें जो गुमराह होने भटकने और समाज

द्वारा बेकसूर दंडित होने से बचा ले। जब पुरूष दूसरा विवाह कर लेता है, तो मान-सम्मान में रहता है और दूसरी स्त्री उसके बच्चों को अपनाती है तो फिर पुरूष ही क्यों न वैसा ही करें....वैसे तो आजकल काफी लोग विधवाओं से विवाह कर लेते हैं और बड़ी सहज-सी बात हो चली है ये।"[18] यहाँ कुसुमजी ने साधवी की समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया है और ऐसी नारियों को दूसरा विवाह करने की सलाह दी है। दूसरे विवाह के विचार इन पात्रों के न होकर लेखिका के अपने लगते हैं। इसके साथ-साथ मुक्ता के पिता-माता, सतपाल बाबू उनकी पत्नी शिव-मंजरी, उदेश-मिन्ना के तनावपूर्ण दाम्पत्य जीवन के दर्शन हमे कुसमजी के आलोच्य उपन्यासों में होते है।

§ड§ <u>असफल विवाह की समस्या</u> : विवाह वासनापूर्ति हेतु किया सामाजिक अनुबंध नहीं है न सन्तानोत्पत्ति के लिए स्वीकारा गया दायित्व। "विवाह मूलतः व्यक्ति के आत्मविकास का माध्यम है।"[19] समय के साथ-साथ विवाह के स्वरूप में पर्याप्त अन्तर तथा परिवर्तन आता रहा है। विवाह के आदर्श रूप को लेकर प्रायः वाद-विवाद होता रहता है। यह वाद-विवाद मुख्यतया सुशिक्षित महिला की ओर से अधिक होता है। कामकाजी महिला के मुख्य रूप से एक प्रश्न मथता है कि क्या विवाह अनिवार्य है ? यदि हां, तो विवाह का स्वरूप क्या होना चाहिए।

विवाह संबंध स्थापित करते हुए स्त्री-पुरूष के समान बौद्धिक एवं मानसिक धरातल की अनिवार्यता आवश्यक है। कुसुम अंसल के "एक और पंचवटी" 1985 में यतीन साधवी के असफल दाम्पत्य-संबंध समान बौद्धिक धरातल की माँग करते हैं। यहाँ एक प्रश्न विचारणीय है कि "बौध्दिक और मानसिक समानता का अभिप्राय क्या है ? क्या पति-पत्नी के लिए एक जैसी डिग्रियाँ धारण करना, समान कार्यक्षेत्र से संबंधित होना, समान विषय के ज्ञाता होना परम अनिवार्य है।"[20]

यदि हाँ, तो एक ही क्षेत्र में एक-सा कार्य करने वाले दो व्यक्तियों में मत वैभिन्न्य क्यों पाया जाता है ? दूसरे क्या मत वैभिन्न्य स्वस्थ चर्चा-परिचर्चा बनकर व्यक्ति के दृष्टिकोण को अधिक स्पष्ट करने में सहायक नहीं होता ? वस्तुतः प्रश्न या प्रश्नों का समूह जटिल स्थिति को जटिलतर कर सकता है, सुलझा नहीं सकता। अतः जब हम पति-पत्नी के समान बौद्धिक मानसिक धरातल की बातें

करते हैं तो इसका अभिप्राय दृष्टिकोन की समानता न होकर, दृष्टिकोन की उदारता होना चाहिए। जहाँ दृष्टिकोन उदार होगा, वहाँ दूसरे का पक्ष समझने का भाव व्यक्ति में स्वयंमेव आ जाता है। यह स्थिति आगे जाकर हार्दिकता, संवेदनशीलता एवं पारस्पारिक सर्मजन की क्षमता को जन्म देती है। यही दाम्पत्य संबंधों के सफल निर्वहण की तीन आवश्यक शर्ते हैं। "साधवी अपने पति की हृदयहीनता से आहत हो जिस प्रकार घर छोडकर अकेले रहने का निर्णय करती है, वह निर्विवाद रूप से उनकी दृढता एवं आत्मविश्वास का सूचक है।"[21] उनके विद्रोह और मांग को एक साथ प्रतिपादित भी करता है। किन्तु यह दृढ़ता प्रकट रूप में विवाह संबंध तथा परोक्ष रूप में परिवार और समाज के अस्तित्व पर चोट करती है।

"पत्नी ही यदि संबंध तोड़कर चली गई तो कैसा घर ? कैसा परिवार?"[22] साधवी दूसरों के दुख को सीने से लगाकर उन्हें कितनी राहत क्यों न पहुँचाए उसका अपना घर तो निश्चित रहेगा। यह दुःखद स्थिति वस्तुतः किसी भी विवेकशील प्राणी को स्वीकार्य नहीं। समाज की नींव कहे जाने वाले परिवार के विघटित हो जाने पर सामाजिक व्यवस्था सुदृढ रह पाएगी ? "उपन्यास का सुखद अन्त सुखान्त रचना के प्रति औसत भारतीय की रूचि का परिचायक नहीं स्वस्थ जीवनमूल्यों के प्रति आधुनिक व्यक्ति की आस्था का सूचक है।"[23] अंसल ने "उसतक" 1979 में मुक्ता की माँ-पापा, सतपाल बाबू उनकी पत्नी के असफल विवाह की ओर संकेत किया है। "अपनी अपनी यात्रा" 1981 में कुसुमजी ने शिव-मंजरी के, मिन्ना-उदेश के असफल विवाह की ओर संकेत किया है।

निष्कर्ष

साधवी का यतीन से अलगाव और फिर यतीन से जुड़ाव असफल विवाह की समस्या को सुलझाने का एक स्तुत्य प्रयत्न लगता है। कुसुमजी व्यक्तिवादी लेखिका होने के कारण लगता है कि वह समस्याओं को प्रस्तुत करती है और हल ढूँढकर समस्याओं का समाधान भी करती है। साधवी की समस्या इसका एक अच्छा उदाहरण हो सकता है। साथ ही साथ मुक्ता के माँ-पापा, सतपाल बाबू की पत्नी, सुरेखा

के माँ-पापा, शिव-मंजरी, मिन्ना-उदेश आदि के असफल विवाह की ओर संकेत करके कुसुमजी ने ऐसे विवाहों से उत्पन्न कड़वाहट को चित्रित किया हैं।

(इ) असुन्दरता के कारण निर्मित विवाह की समस्या :- विवाह की वेदी पर चढते समय सुंदरता-असुंदरता का, एक-दूसरे की पसंदी, सहमती आदि का विचार किया जाता है। "अपनी-अपनी यात्रा" की सुरेखा जो देखने में सामान्य होने के कारण उसका विवाह निश्चित करते समय अनेक-सी समस्याएँ परिवार के सामने खड़ी होती है, इस पर कुसुमजी ने प्रकाश डाला है।

सुरेखा द्वारा दिल्ली से एलएल·बी·की उपाधि प्राप्त करना, बाबूजी और उसके पापा द्वारा विवाह के लिए उसके योग्य लड़के की तलाशी में लगना, परंपरागत विवाह के कारण सुरेखा को एक और नाम और घर बदलने की स्थिति का निर्माण होना, उसे किसी अनजान सहारे को पकड़ने की मन की तैयारी करना, इसमें उसे दु:ख होना, विवाह के लिए खोजे गये लड़कों से उसे नफरत होना, एक दिन शाम को उसे देखने के लिए कई लोगों का आना, इन सभी घटनाओं को नजरांदाज करती हुई और भीतर ही भीतर सुलगती हुई सुरेखा कहती है - "अपने आपकी इस तरह नुमाइश बनाकर बैठ जाना और आगन्तुकों की बेसिर पैर की बातों का जवाब देना कुछ ऐसा लगता था, जैसे और कुछ नहीं, सुरेखा के व्यक्तित्व का पोस्टमार्टम हो रहा हो। उसके भावुक मन की शव परीक्षा ही तो थी वह।"[24] लड़केवाले लोग आते हैं। चाय पीने के बाद सुरेखा को पास बिठाया गया। वह अपने भाग्य के निर्णायकों पर सोचती है। वह इस स्थिति में भाग जाने की बातें भी सोचती है परंतु पिताजी के मान और इज्जत पर वह सोचती है। सुरेखा को देखने के बाद बेटे वाले के लोग कहने लगे - "माँ तो बहुत खुबसूरत है। बेटी के जन्म के समय क्या खाया था। बैंगन या बरसाती जामुन ? ही···ही···ही।"[25] सुरेखा पर व्यंग्यात्मक स्वर में हँसने लगते हैं। सुरेखा बहुत दुखी हो जाती है। क्योंकि सावले वर्ण के कारण उसकी निंदा की जा रही थी। उसका सावला वर्ण क्रोध से तपकर वास्तव में काला होने लगा था। माँ-बाबूजी स्तब्ध थे। बाबूजी सांत्वना दे रहे थे। "बुरा न मानना बेटी। मैं जानता हूँ, तेरा रूप मेरे मंदिर की राधिका है तू।

जब तू और मिन्ना आरती गाती हो तो मुझे लगता है साक्षात राधाजी तुझमें आ समाई है। जी को यह बात न लगाना बेटी। नन्दजी का स्वभाव ही है मजाक करने का।"[26]

सुरेखा का एल्.एल्.बी. की परीक्षा पास होने पर परिवार वालों ने उसे बधाई का पत्र तो लिखा परंतु पिताजी उसके विवाह को बोझ महसूस करते हुए सोचते हैं - "अरे लो और मुसीबत एक तो वैसे ही हमारी बिजनेस क्लास में अच्छे लड़के नहीं मिलते और सुरेखा ने लॉ में फस्ट डिव्हिजन ली है।"[27] सुरेखा के अथक परिश्रम का इनाम था जो उसे मिल रहा था। सुरेखा तो जिन्दगी के नाम पर एक अरण्य में भटक गई थी। हाथ लग रहे थे अपमान, उदासियाँ, खालीपन और टूटते सपने हाथ में आ रहे थे। सुरेखा की शादी की बातचीत यहाँ-वहाँ चल रही थी, पर अभी तक कहीं भी बात नहीं बनी थी। बीच में एकाद बार कोई-न-कोई आकर उसे देख भी गए थे। हर बार वह अपने मन में अपनी भावना को मारता हुआ देखती रही थी। नुमाइश की तरह सजकर अपने मन को अपने शरीर से विपरित जाता हुआ देखती रही थी। मजबूरी ने हाथ बाँध दिए थे।

सुरेखा प्रैक्टिस करना चाहती थी लेकिन पापा कहते थे कि प्रैक्टिस करके क्या करना है ? पैसे की कुछ कमी नहीं है। "शादी हो जाए बस यही काफी है।"[28] उसके मन में चीढ़ निर्माण होती। बेटी की शादी माता-पिता के कंधों पर बोझ के समान है। वह शादी रूपी बोझ उतारने में हमेशा तत्पर रहते हैं।

सुरेखा के लिए पिताजी ने कितनी जगह बात की थी। लेकिन उसके कुरूपपन के कारण कहीं बात नहीं बनी। "रूप ही ऐसा पाया है छोकरी ने। अब कोई चारा नहीं है तो ठीक है, कहीं काम धाम करे आजकल लड़के कमाऊ लड़कियाँ ले जाते हैं।"[29] आधुनिक काल में शहरी जीवन में रहने वाले लड़के वाले नौकरी करने वाली नारी को अधिकाधिक पसंद करते हैं क्योंकि बढ़ती हुई मँहगाई में एक आदमी अपने परिवार का भरण पोषण ही कर सकता है। उन्नति के पथ पर अग्रसर होने के लिए नौकरीपेशा नारी का स्वीकार करते हैं।

वह अपनी प्रैक्टिस प्रख्यात वकील शिव के मार्गदर्शन में करने लगी। माँ-बाप जिससे उनका जी चाहता है, अपनी लड़की या लड़के को बाँध देते हैं - कि लो, यह तुम्हारा जीवन साथी है। बस पकड़े रहो, घुटते रहो, सहते रहो, ... मगर विद्रोह करोगे तो सब कहेंगे, चरित्रहीन है बुरी है, निभाना नहीं आता, जबकि हिन्दू विधि में विवाह के लिए वैदिक काल का मंत्र देकर लिखा है - "जब क्या सुन्दर और सुशिक्षित हो तो वह पुरूषों में से अपने मित्र (भावी पति) को स्वयं ढूँढ लेती है।"[30] लेकिन वेद की इस पद्धति को किसने माना? यह हक कहाँ दिया लड़कियों को कि वह खुद पति ढूँढ ले ? यदि किसी ने अपनी मर्जी के नुसार किया तो कितने आरोप समाज के सहने पडते हैं। सुरेखा मनपसंद पति ढूँढना चाहती है परंतु परम्परागत विवाह पद्धति उसे ऐसा करने नहीं देती।

सुरेखा की सौतेली माँ अपने स्नेही तथा रिश्तेदारों के साथ बातचीत करते वक्त सुरेख की शादी की बात होती है, व्यंग्य भाव से कहने लगती हैं - 'क्या करे, बाप ने कितनी कोशिश की कहीं शादी हो जाए, पर किसी ने पसंद ही नहीं किया। हम तो पैसे वगैरा देकर के भी तैयार थे पर कहीं बात नहीं बनी। हारकर बाप ने वकालत करने की इजाजत दे दी। क्या करें, हर वक्त घर पर जवान लड़की बैठाकर चैन भी तो नहीं आता था। मजबूरी है, गले पड़ा ढोल तो बजाना पड़ता है।"[31] सुरेखा के असुंदरता के कारण उत्पन्न हुई विवाह समस्या पर यहाँ प्रकाश डाला है।

निष्कर्ष

यहाँ विवाह संस्था की अनेक-सी कमियाँ, स्वार्थी प्रवृत्तियाँ आदि का चित्रण करके आज ऐसे असंगत विवाहों के कारण युवतियों को घुटनशीलता बर्दाश्त करनी पडती है इस पर प्रकाश डाला है। असुंदरता को लेकर वधूपरीक्षा में वधू की होने वाली हेटी और इससे उत्पन्न उसकी मानसिकता पर सुरेखा के माध्यम से अच्छा प्रकाश डाला है।

§ई§ दहेज की समस्या : दहेज वैवाहिक जीवन की सबसे बडी समस्या है। अनमेल विवाह, बहुपत्नीत्व की प्रथा इसीका परिणाम है। आज नागरी समाज तथा ग्रामीण परिवेश में भी दहेज प्रथा का रूप भयावह बैठा है। "दहेजबलि" नारियों की संख्या में वृद्धि हो रही है। अनेक युवतियों को दहेज के कारण अपना नाजुक व्यक्तित्व मिटाना पडता है। इसी समस्यासे संत्रस्त युवती के माता-पिता भी भयावह मानसिक खिंचातानी से गुजरते हैं। शिक्षा प्रसार के बाद भी यह प्रवृत्ति बलवती बनती जा रही है। पति-पत्नी के रिश्ते अर्थकेंद्रित बने हैं जो धनाभाव के कारण टूटते रहते हैं। सन 1961 में सरकार ने दहेज प्रतिबंधक कानून करने पर भी यह सिलसिला अभी तक जारी है। साठोत्तरी हिन्दी में भगवती चरण वर्मा के "थके पाँव", "सीधी सच्ची बातें", धुमकेतू के "माटी की महक", रामदरश मिश्र के "जल टुटता हुआ", राही मासूम रजा के "कटरा की आर्जू" राजरानी पारीक के "टूटती सीमाएँ" आदि उपन्यासों में इस समस्या पर गहराई से चिंतन किया हैं।

कुसुम अंसल ने "अपनी-अपनी यात्रा" 1981 में इस समस्या पर संकेत करके इसकी भयानकता को प्रस्तुत किया है।

मिन्ना की शादी बड़ी धुमधाम से की जाती है। लेकिन मिन्ना के ससुराल वाले स्वार्थी होने के कारण मिन्ना हर बार त्यौहार पर पहले ही बता देती है कि यह भेजना है, वह भेजना है। पहली दीवाली आ रही है, न सो टेलीविजन मांगा है वह भी विलायती। बेटी के माता-पिता को बार-बार ससुरालवाले लोगों के कहने पर चलना पडता है। आज कल स्वार्थी वृत्ति अधिकाधिक दृढ हो रही है।

भारतीय जीवन पद्धति के अनुसार वधू विवाह के बाद पतिगृह में प्रवेश करती है। वह मात्र पति की ही नहीं परिवार के अन्य सभी सदस्यों की भी सेवा आदर, मान करती है। यह एक प्रकार से उसके ग्रार्हस्थ धर्म का मुख्य अंग है। यह स्थिति मात्र किसी महानगरीय परिवेश पर लिखे गये उपन्यास की ही नहीं, आज के समय की सबसे बड़ी महानगरीय समस्या है। प्रतिदिन कितनी ही महिलाएँ

दहेज की खातिर जलाकर मार दी जाती हैं। पूरा संसार प्रगति कर रहा है। परमाणु बम से लेकर यात्राओं का युग है। परन्तु भारत में स्त्री का क्रय-विक्रय आज भी हो रहा है, ब्याह होते हैं। "पूरा दाम न चुका पाने के कारण दुर्बल गरीब कन्याओं को घुटते हुए रसोई घरों में जला दिया जाता है। उनकी चीखें, उनकी मृत देह से उठती जलांध किसी कानून का कोई दरवाजा अभी तक नहीं खटखटा पाई है।"[32]

कुसुम अन्सल के उपन्यास "अपनी-अपनी यात्रा" की मिन्ना भी एक ऐसा पात्र है जिसे दहेज के खातिर नित-नये टार्चर से गुजरना पड़ता है। उसके कसूर भी इस प्रकार गिनाये जाते हैं - मिन्ना मायके लौट आयी थी। कारण भी अजबी था यही कि दहेज की किसी एक साड़ी पर ट्रंक में लगी जंग का कोई एक निशान था। मिसेज बत्रा (सास) ने फौरन माँ को फोन किया कि आकर साडी ले जाओ। माँ उसी समय वहाँ गई। दाग लगी साडी के बदले नई साडी दी और लौटी तो उन्हें कहा गया कि मिन्ना को भी साथ लेती जाओ। कसूर बहुत से गिनाए उन्होंने "मणिका स्मार्ट नहीं है, मणिका को अच्छे स्कूल में नहीं पढ़ाया आपने, यह ठीक अंग्रेजी नहीं बोल पाती है। उदेश उसे पार्टी में नहीं ले जा सकता, क्योंकि वह अंग्रेजी डान्स नहीं कर सकती। उदेश के दोस्तों के साथ खुलकर बात करने की तमीज नहीं थी उसे और बच्चे के जन्म पर फिर से देने लेने का बड़ा-सा सवाल सामने था, परिणाम यह हुआ मुझे यकीन है कि उदेश मिन्ना को मारता-पीटता भी है। कोई कह रहा था कि मिन्ना कि बाहों पर सिगरेट से जलाने के निशान हैं।"[33] और अन्त में फिर वही मिन्ना कष्ट न सह सकने के कारण प्रसव के समय मर जाती है। सुरेखा के शब्दों में - "मधुर, इस शादी के खूटे के बंधी मेरी मिन्ना मेरी मिन्ना चली गई - मर गई। मुझे विश्वास है कि शी हेज नॉट डाइड ऐ नैचुरल डैथ। ऐसे तो कोई नहीं मरता है मधुर।"[34]

निष्कर्ष

आज महानगरों में बढ़ी हुई जरूरतों के कारण दहेज पीड़ित कितनी ही नवयुवतियाँ आज ऐसे ही मर रही हैं। हर सुबह का समाचार पत्र यही खबर देता

है कि उस दिन दहेज की वेदी पर कितनों की भेंट चढ़ी, कितनी रसोई घरों में जला दी गई और कितनी कुएँ में फेंक दी गई। इस बर्बरता का अंत क्या है? कब तक यह दुराचार इस समाज में ऐसे कायम रहेगा और बेगुनाह जीवन होम होते रहेंगे ? सवाल-सवाल ही बने रहते हैं। उनका उतर हमारे समाज, हमारी सरकार किसी के पास नहीं है। अभी तक इस दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया है और न ही सरकार इस दिशा में कुछ विशेष कर रही है। स्त्री के क्रय किये जाने की ऐसी शर्मनाक स्थिति शायद ही संसार में कहीं और होगी जैसी भारत के महानगरों में हैं और शायद यही है हमारे महानगरीय बोध की एक कटु उपलब्धि। कुसुम अन्सलजी ने महानगरीय सभ्यता दहेज के कारण आज कितनी अमानवीयता का शिकार बन चुकी है, इस पर सोचा है।

विवाह से उत्पन्न समस्याएँ - निष्कर्ष

नारी चाहे वह महानगरीय नारी हो या ग्रामांचलिक सभी के सामने विवाह से उत्पन्न अनेक-सी समस्याएँ निर्माण होती है। "विवाह" एक ऐसा संस्कार है जिसे स्वीकार करना सभी नारियों का परम कर्तव्य माना जाता है। यदि विवाह को अस्वीकार करके कोई नारी रहना चाहती है तो भी उसके सामने अनेक-सी समस्याएँ खडी होती है। नारी विवाहित होकर जीवन यापन करने लगती है तो भी अनेक समस्याओं के साथ संघर्ष करते-करते उसे गुजरना पडता है। कुसुम अंसल ने आंतरजातीय प्रेम-विवाह की समस्या, अविवाह से उत्पन्न समस्या, विवाहोपरान्त पति-पत्नी तान-तनाव की समस्या, असफल विवाह से निर्मित समस्या, लडकी की असुंदरता के कारण निर्मित समस्या, दहेज की समस्या आदि समस्याओं के माध्यम से यह विशद किया है कि विवाह न करने से और विवाह करने से भी नारी जीवन में अनेक-सी समस्याएँ खड़ी होती हैं। विवाहोपरान्त समस्याओं से बचने के लिए कुसुमजी की "उस तक" की मुक्ता और "अपनी-अपनी यात्रा" की सुरेखा अविवाहित रहने का निर्णय लेती हैं तो विवाहोपरान्त घुटनशीलता के माहौल को तोड़ने के लिए "एक और पंचवटी" की साधवी भारतीय नारी संस्कृति की सीमाओं को तोड़कर विवाहबाह्य संबंध स्थापित करती है। कुसुम अंसलजी ने "विवाह" संस्था से निर्मित

नारी समस्याओं पर गहराई से सोचा है।

यौन-संबंधों से निर्मित समस्याएँ

यह एक सत्य है कि यौन आवेग मनुष्य को सबसे अधिक सम्मोहित करता है। मानव की यौन-संबंधों की अनेक विध अभिव्यक्तियाँ हिन्दी उपन्यासों के ये यौन-संबंध वैविध्य, परिणाम, आंतरिकता तथा विस्फोटात्मकता के स्तर पर स्वयं की एक पृथक सत्ता स्थापित कर चुके हैं। "प्रेमचंद के युग में यौन-संबंध गुलाम मनोवृत्ति एवं नौकरशाही की छाया में पलते रहे। प्रेमचंदोत्तर युग में यौन-संबंधों को कामकुंठा के रूप में देखा गया। सन 1960 के बाद भारतीय राजनीति, समाज व्यवस्था, अर्थव्यवस्था एवं समग्र जीवन प्रक्रिया में काफी परिवर्तन आया जिससे यौन स्वच्छंदता अनंत खुले आकाश में विचरने लगी। साठोत्तरी कालखंड के अधिकाधिक उपन्यासों में निम्न-मध्यवर्गीय तथा उच्च-मध्यवर्गीय युवा पीढ़ी के यौनाचार चित्रित किये गये हैं। समग्रतः यौन संबंधों पर भी कई उपन्यास लिखें हैं और इन उपन्यासों में अल्प यौन संबंध, दमित यौन संबंध, विकृत यौन संबंध, अप्राकृतिक यौन संबंध, अतृप्त, तीव्र यौन संबंध, अनमेल यौन संबंध आदि कई प्रकार के यौन-संबंधों का चित्रण होने लगा।"[35]

"आज की महानगरीय नारी यौन विकृति का शिकार बन गयी है और ये यौन विकृतियाँ केवल नारी-पुरूष संबंधों तक सीमित नहीं रही है बल्कि समलैंगिकता पशुता तक पहुँची है और इसीलिए आज के नारी के प्रेम और यौनसंबंधी जीवनमूल्य इतने परिवर्तित हुए हैं कि उसकी अति कामुकता ने उसे पशु ही बना दिया है।"[36] अपवाद रूप में कभी-कभी नारी को अपनी विवशता के कारण कृत्रिम प्रेम और कृत्रिम यौन संबंध स्थापित करने पड़ते हैं। "संक्षेप में जब व्यक्ति के यौन भावना की समाज सम्मत प्रकृत यौनाचरण से परितृप्ति नहीं होती अथवा अन्य प्रकार के कृत्रिम आचरण उसे यौन, परितृप्ति प्रदान करते है तो उसका वह आचरण यौन विकृत कहलाता है।"[37] साठोत्तरी काल में पुराने मूल्यों की जगह नये मूल्य स्थापित हो रहे हैं। धर्म, नीति, सदाचार आदि बातों से मनुष्य का विश्वास हटता जा

रहा है। परिणाम स्वरूप उसके यौन-संबंधों में भी उच्छृंखलता दिखाई देने लगी है। वास्तव में नैतिकता पर ही उच्छृंखलता का द्योतक होता है, जिससे विकृतियाँ निर्माण होती है। "सब काम-विकृतियों की यह एक सामान्य विशेषता है कि उनमें उद्देश्य प्रजनन नहीं रहता। असल में इसी कसौटी से हम यह फैसला करते हैं कि कोई यौन व्यापार विकृत है, अर्थात यदि यह अपने प्रजनन के उद्देश्य को छोड़कर चलता है और स्वतंत्र रूप से परितृष्टि प्राप्त करना चाहता है तो यह विकृत है।"[38]

हम यहाँ यौन-संबंधों के कई प्रकारों पर सोचते-सोचते कुसुम अंसलजी के आलोच्य उपन्यासों में किन-किन प्रकारों के यौनसंबंध आये हैं इसकी तलाश करेंगे।

1· <u>नितान्त वासनात्मक यौन-संबंध की समस्या</u>

आज का अधिकांश युवा वर्ग एक खुलापन जीने लगा है। बिना प्रेम किये, बिना विवाह के आपसी यौन-संबंध जीने में उन्हें कोई झिझक नहीं होती रही है। पाश्चिम का प्रभाव भी इस भावना में शामिल है।

महानगरों में उन्मुक्त यौन संबंधों को आज के सामाजिक परिवेश में अधिक बढ़ावा मिल रहा है। आधुनिक परिवेश में नितान्त वासनात्मक संबंधों के बढ़ जाने का एक और भी कारण है। प्रायः विवाह के पूर्व या पश्चात् किसी अन्य पुरूष से काम संबंध स्थापित कर लेने पर जो समस्या आड़े आती थी वह थी अवैध सन्तान की। अतः काम संबंध वेश्याओं, रखैलों, बांदियों, लौंडियों आदि से रखे जाते थे। जिनको समाज में कोई मान्यता नहीं मिलती थी। "आधुनिक काल में गर्भ निरोधक अविष्कारों एवं संतति निरोधकों से काम-संबंधों को एक प्रकार की उन्मुक्तता प्राप्त हुई है।"[39] निःशुष्क गर्भपात और सभी प्रकार के निरोधकों का ब्यौरा समाचार पत्रों-पत्रिकाओं तथा पोस्टरों द्वारा जन-जन तक पहुँचता है। अतः गर्भ धारण करने का भय सहज ही मन से निकल जाता है। कदाचित इसके परिणामस्वरूप महानगरों में शिक्षित वर्ग के अविवाहित प्रेम अब अशारीरिक प्रेम में विश्वास नहीं करते अपितु समय और अवसर मिलने पर किसीसे भी शारीरिक संबंध स्थापित, विकसित

कर लेने में कोई बुराई नहीं मानते।

कुसुम अन्सल के उपन्यास "उस तक" 1979 में दिल्ली महानगर की एक गली के एक बड़े से मकान में जहाँ कई परिवार साथ-साथ किराये पर रहते हैं, एक कमरा है, जहाँ दोपहर को विवाहित और अविवाहित स्त्रियों के नितान्त वासनात्मक संबंध जुडते हैं। मुक्ता जानती थी कि अपनी साथवाले घर के बड़े लड़के अनिल से चौबारे पर खड़ी होकर हँस-हँस कर बातें करती है। वह भी दोपहर को छत लांघकर ऊपर ही बरसाती में चला जाता और भजनी भी। "स्कूल से आकर कई बार जब मुक्ता छत पर सूखे कपड़े लेने जाती तो बरसाती की टूटी खिडकी से उन दोनों को एक ही चारपाई पर गुत्थमगुत्था देखकर जाने क्यों काँपती-काँपती लौट आती है।"[40] कपड़े न लाने के कारण माँ डाँटती है फिर ऊपर चली जाती तो दरवाजा खुला है और भजनी कपड़े संभालती बाहर आ रही है। अनिल-भजनी एक ही बस्ती के युवक-युवती हैं। नगरों में यौन-संबंधों की वृद्धि हो रही है। इसी कारण एड्स जैसे महारोग समाज में फैल रहे हैं। दीवार लांघता हुआ अनिल मुक्ता से आइस्क्रीम देता है और कहता है - "किसी से कुछ मत कहना।"[41] मुक्ता के होठों पर एक और ताला लग जाता और उसके पावों में एक और कम्पन आ समाता है।

कुछ दिनों के बाद उसी कमरे में एक दिन हलके से उसने दरवाजा खोल दिया। भीतर का दृश्य देखते ही सन्न रह गई। चारपाई पर विद्या लेटी थी और अनिल पास बैठा था। पहले की तरह उसे कंपकपी छूटी थी। विद्या उसे देखकर झट से उठ बैठी, जैसे "बिजली का करेंट छू लिया हो।"[42] मुक्ता के पैर धरती से जम गये। क्या करे, क्या न करे कि अनिल ने दौड कर उसे कसकर पकड़ लिया। "ठहर जाती कहाँ है ? साली रोज ताक-झांक करती है। आज तुझे भी देख लूँगा और अनिल ने मुक्ता को घसीटकर चारपाई पर डाल दिया।"[43] और वही गली मुहल्ले की लड़कियाँ अवैध बच्चे जनती थी और किसी को कानोकान खबर नहीं होती थी। महानगर में जीवन विशेष रूप से एक दिशा में बहता है वह है जीवित

रहने की मजबूरी। "टू एग्जिस्ट" या जीते चले जाना जो बहुत बार इतना कठिन होता है कि मनुष्य का सभी कुछ दाँव पर लग जाता है।"[44] यही कारण है कि बिरादरी और समाज का डर मन से चल जाता है और महानगर में एक प्रकार की स्वच्छन्दता भी उसे मिल जाती है। उस स्वच्छन्दता के कारण घर से बाहर नारी कामकाज के चक्कर में बहुत कुछ मजबूरी सहती है और बहुत कुछ सहजता से करती भी है।

महानगर में एक पूरा अन्डरवर्ल्ड तैयार होता है। जिसके हाथ बड़े-बड़े पदाधिकारियों से मिले होते हैं। अतः वह क्राइम और सभी प्रकार के खतरे मोल लेने में हिचकता नहीं है। महानगर जहाँ एक ओर उच्छृंखलता देता है वहाँ दूसरी ओर उतनी ही असुरक्षा भी प्रदान करता है। नितान्त वासनात्मक संबंध जीने की सुविधा महानगरों में अधिक हुई है। महानगर की आपाधापी में अपना ही परिवार एक-दूसरे से कटा हुआ है।

महानगरों में वासनात्मक उन्मुक्त यौन-संबंध आज के सामाजिक परिवेश में इतना अधिक बढ़ावा मिल रहा है। श्रीमती अन्सल के "उसतक" उपन्यास में

भजनी मंडली में अनिल बैठकर भजन कर रहा था। बीच में विद्या की ओर देखता था। बीच में उठकर मुक्ता से वासनात्मक स्तर पर बातचीत करते हुए कहता है - "बडी हुसन की परी निकल आयी है। अब तो नजर भी नहीं मिलाती कॉलेज क्या जाने लगी, अपने को बड़ा समझने लगी है।"[45] लेकिन मुक्ता के मन में वासनात्मक के भाव नहीं।अनिल की भर्त्सना करती हुई कहती है - "तू जाता है यहाँ से···· जा भजन गा जाकर देवी के।" अनिल के भाव पूर्णरूपेन वासनात्मक होने के कारण उसकी बोलचाल की भाषा में यौन भाव अधिक मिलते हैं। "भजन तो तरे गाना चाहता हूँ, रानी।"[46] मुक्ता आगबुला हो जाती है। अनिल समझता है कि मुक्ता अपने प्रेमजाल में फँसने वाली नहीं है। इतना ही नहीं तो उसे लगता है कि मुक्ता आग के सामने बैठकर अब चाय बना रही है। "आग के निकट बैठी तपतपाये मुखवाली मुक्ता और कोई नहीं, क्रोध में उगलती देवी माता है और वह चुपचाप

वहाँ से खिसक लिया।"[47] "उस तक" में अनिल, विद्या, भजनी के माध्यम से नितान्त वासनात्मक यौन-संबंधों पर लेखिका ने प्रकाश डाला है। अंसल के "अपनी अपनी यात्रा" 1981 में शिव के बेटे अवधेश की सुरेखा के प्रति संबंध रखने की जो चाहत है, इनमें भी नितान्त वासनात्मकता के दर्शन होते हैं। अन्सल के "एक और पंचवटी" 1985 में साधवी-विक्रम के संबंधों में विक्रम के वासनात्मक संबंधों का चित्रण आया हैं। इसे अवैध यौन-संबंध के बीच विस्तार के साथ चित्रित किया है। पुनरावृत्ति टालने के लिए यहाँ केवल संकेत दिया है।

2· केवल प्रेम के लिए यौन-संबंध की समस्या

जब कभी विवाह नामक संस्था का जन्म हुआ होगा, तब उसके मूल में यह बात भी होगी कि उस पीढ़ी की आनेवाली संतानों का एक नाम मिल सके, अनाम फैलते असंख्य जनसमूह को समेट कर पंक्तियों में विभक्त करने का एकमात्र व्यवस्थित तरीका यही सूझ पड़ा होगा।

विवाह के कारण दो नितान्त भिन्न स्थितियों में पनपे भिन्न रूचियों वाले युवक-युवती को जोड़ दिया जाने लगा। जीवन में एकात्मकता उपजा पाने के कारण विवाहित जीवन बोझ बनने लगा और इस बोझ को उतार फेंकने के लिए आधुनिक दम्पती आतुर रहने लगे। ऐसे विवाह जिनके जीवन में कोई आधार नहीं है, जो निरर्थक सिद्ध हो चुके हैं, विवाहोत्तर संबंधों की बहुत-सी झलकियाँ हमें समकालीन हिन्दी उपन्यासों में देखने को मिलती हैं। कुसुम अंसल के "उसतक" 1979 में केवल प्रेम के लिए यौन-संबंध की समस्या पर चिंतन किया गया है।

"उसतक" उपन्यास में कलकता के दफ्तर में मुक्ता काम करने लगी। उसके आफिस के विवेक, राजिंदर और नाटक के साथ जुड़े सुखेन्दु और अपूर्वदादा आदि अनेक मित्र बने थे। जो उसके जीवन के खालीपन के कुछ पल भरते थे। परन्तु कोई भी अच्छी तरह जुड़ता हुआ मुक्ता को नहीं लगा।

सुखेन्दु के हाथों का शीतल स्पर्श अपने पसीजे हुए हाथों पर कई बार अनुभव किया था, मुक्ता ने उस पल अपने में जीवन की एक लहर दौडते भी पायी थी। "जान बुझकर एक शाम वह सुखेन्दु के दफ्तर में अकेली रह गई थी। सुखेन्दु ने भी उसे बाहों में भींचकर उसके होठों पर धीमा-सा स्पर्श किया था। वह चाहती थी कि उस स्पर्श में डूब जाये अपने आपको खो जाने दे, भूल जाये सब कुछ। एक सुख एक तृप्ति उसके अन्दर आ समाये। सुखेन्दु के बाहों के घेरे में अपने आपको पिस जाने दिया।"[48] लेकिन कहीं भी कोई सुख नहीं जागा और मुक्ता को लगा, वह अब और नहीं सह सकेगी। फिर वह धीरे-धीरे अपने को सुखेन्दु से मुक्त करने लगी। सुखेन्दु के आग्रह टूटने गये और मुक्ता चाहकर भी उनमें अपने को नहीं जोड़ सकी। "सुखेन्दु कभी-कभी उसे फिर बाहों में घेरकर अपनी ओर खींचता है। सुखेन्दु की आँखों का रंग बदलता है, वह पहचानती है उस पलटते रंग को, पर क्या करे विवश है।"[49]

श्यामली-वीरेन्द्र के चाहने पर भी मुक्ता सुखेन्दु से विवाहबद्ध होना नहीं चाहती। वह सुखेन्दु को समझाते हुए कहती है - तुम मुझे समझने का प्रयास करो। मेरी तुम्हारी शादी कभी ठीक नहीं रह सकती। मेरे मन से आज बोझ-सा उतरा है। तुम्हें अपने बारे में साफ कह देने से एक चिंन्ता दूर हुई है - हम मित्र रहेंगे। "तुम्हारी शादी के बाद भी मैं तुम्हें ऐसे ही बाहों में भीच लूँगी ऐसे ही तुम्हारे गालों पर चुम्बन दे दूँगी।"[50] यहाँ केवल प्रेम के लिए ही यौन-संबंध स्थापित हुआ है। इसमें विवाह बंधन की अस्वीकृति देखने को मिलती है।

अक्षय के उद्विग्न फैले हाथ मुक्ता के बाहों को घेर रहे थे, पहली बार मुक्ता को लगा था। मन में अक्षय के लिए बहुत कुछ जाग उठा है - "स्नेह, सहानुभूति, प्यार और वह बाहों का सशक्त बंधन बेहोशी की खाई में उतारता चला गया।"[51] मुक्ता को लगता है कि आज तक कुछ मन में वासनिक भाव अक्षय के प्रति नहीं उठे थे और आज मन का सबकुछ अक्षय के अनबहे आँसुओं में पश्चाताप की तरह तैर रहा है। वह अक्षय के हाथों में पूरी तरह समर्पित हो गयी थी। एक आंधी का दौर दोनों से गुजर रहा था। पलंग के बीच में वह थी। एक ओर

नींद में बेहोश किन्नी और दूसरी ओर बेखबर सोया हुआ अक्षय था। "तृप्ति के पंख नहीं होते पर मुक्ता को लगा कोई दो पंख उसके शरीर से जुड गये हैं और वह उड़ी जा रही है, उड़ी जा रही है। अंगडाई लेती हुई वह अक्षय के चेहरे पर झुक गयी थी। अपनी नर्म उष्ण सांसों से वह उसकी उदासी की नर्मी को बनाकर उड़ा देना चाहती थी।"[52]

दोपहर के समय अक्षय जब दबे पाँव भीतर आया, तो देखा मुक्ता अपने कमरे में एक बड़े "बक्स में सामान लगा रही थी। नीले प्रिंट की साडी और खुले हुए लम्बे बाल अस्तव्यस्त बिखरे थे। धीमे स्वर में गीत गुनगुना रही थी। उसका व्यक्तित्व अक्षय को आकर्षित कर रहा था। अक्षय बहुत पास आकर खड़ा हुआ। "उसका अपना स्व उसमें से उठकर मुक्ता के स्व को पा लेने को आतुर था, पर एक नियंत्रण नसों को झटक गया। फैले हुए हाथ सिमट आये थे। उसे बिलगाव का भाव ओढ लेना पडा।"[53]

अंसल के "अपनी-अपनी यात्रा" 1981 में शिव का बेटा अवधेश सुरेखा के साथ जो संबंध स्थापित करना चाहता है वह केवल प्रेम और उपभोग के लिए ही। वह इस संबंध को स्थापित करते समय उम्र तथा अन्य बातों का विचार नहीं करता है।

आधुनिक जीवन में यह आम-सी बात हो गई है। अनेकों स्त्री-पुरूष विवाहित होते हुए भी अपने वासनात्मक संबंध कहीं-न-कहीं बनाये रखते हैं। क्लबों में, होटलों में, गेस्ट हाऊसों में या नितान्त अकेले परिवारविहीन फ्लैटों में और किसी को कानोकान खबर भी नहीं होती। यही कारण है रोज इस प्रकार के अड्डे बढ़ते जा रहे हैं, तलाक बढ़ रहे हैं और परित्यक्ताएँ भी। मुक्ता-सागर, मुक्ता-सुखेन्दु , मुक्ता-अक्षय के रूप में केवल प्रेम के लिए यौन-संबंध की समस्या पर कुसुमजी ने सोचा है और यह विशद किया है कि आज महानगरों में ऐसे संबंध बढ़ते जा रहे हैं।

3· स्वार्थ के लिए व्यवसायीकृत यौन-संबंध की समस्या

अपने घर की लक्ष्मण रेखा लाँघकर जब भी कोई स्त्री बाहर की दुनिया के कार्यक्षेत्र में प्रवेश करती है तब उसके सामने कई समस्याएँ आ खड़ी होती हैं। बाहर आने पर उसका परिवार धीरे-धीरे उसे छोड़ता चला जाता है और दूसरी ओर बाहरी परिवेश उसकी अपनी जीवन यात्रा पर इतना हावी हो जाता है कि वह फिर पुराने छोडे हुए घरेलू मुखौटे को धारण नहीं कर पाते। उसके सम्मुख एक ही विकल्प शेष रह जाता है, निरन्तर आगे बढ़ते जाने का। इस जीवन यात्रा में वह अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को विकसित करके एक लक्ष्य तक ले जाने को आतुर रहती है। इस बीच दुविधाएँ आती हैं, उन्हें वह स्वीकारती जाती है। कामकाजी महिलाओं की मजबूरियों के बीच अपने सहकर्मियों और प्रधान या बॉस से सम्बन्ध रखने पड़ते हैं। नौकरी बनाये रखने के लिए यह आवश्यक हो जाता है। यह संबंध बहुधा विकृत रूप भी धारण कर लेते हैं। "नारी की मजबूरियों का पुरूष भरपूर फायदा उठा लेते हैं।"[54] नौकरीपेशा नारी अधिकतर अपने बॉस का शिकार बन जाती है। कुसुम अन्सल के उपन्यास "उसतक" 1979 की नायिका मुक्ता के रूप में इस समस्या पर प्रकाश डाला गया है। मुक्ता अपने बॉस की कामुकता का शिकार है। उसके जीवन की महत्वाकांक्षा उसे मजबूर कर देती है कि वह इसे झेल ले। उस शाम सतपाल बाबू बहुत भावुक हो उठे थे। उनकी नर्म आँखों में एक दर्द तैर आया था। मुक्ता उसी के बारे में सोच रही थी कि "उस सुनसान कमरे में उसके हाथों पर सतपाल बाबू की गिरफ्त सख्त होती गयी थी। मुक्ता का अनमनापन जब तक प्रतिवाद में बदलता सतपाल बाबू के बदबूदार दाँत उसके शरीर को छील गये थे। मुक्ता ने अपने को पतन के एक और दाँव पर चढ़ जाने दिया था। बहुत दिन पहले का अनिल का क्रूर चेहरा आँखों में तैर गया। उसके जीवन में नया फ्लैट आ गया था। नये कपड़े, परफ्यूम, फिएट कार और विदेश का ट्रिप। कुसुम अन्सल के "अपनी अपनी यात्रा" 1981 में सुरेखा-शिव के रूप में भी लेखिका ने स्वार्थ के लिए व्यवसायिकृत यौन-संबंधों की समस्या पर संकेत किया है।

महानगर में एक और जहाँ धनाभाव के कारण कुछ स्त्रियाँ अपने शरीर का विक्रय हो जाने देती है, वहाँ की दिलजोई के लिए कर लेते हैं। मुक्ता जैसी अनेक नारियाँ आज दफ्तरी माहौल की यौन-संबंधों की समस्या से पीड़ित हैं।

4· यौन-वर्जन की समस्या

इस समस्या का चित्रण भी "उस तक" में आया है। मुक्ता के सपने, सपने ही रह जाते हैं। वह एक ऐसे "एअरपोर्ट"सा बिछी रही जाती है, जिस पर सतपाल बाबू, सागर और अक्षय रूप झोंके आते हैं और चले जाते हैं। उसे और वीरान बना जाते हैं। "वह एक ऐसी नारी है जिसके यौवन पर अनिल-सा गुण्डा डाका डालता है। वह ऐसी छुई-मुई है, जिसे सुखेन्दु छुता है और वह मुरझा जाती है।"[56] इस तरह मुक्ता के यौन का भोग तो अनेक लोग करते हैं किन्तु उसे स्थायी सहारा देने के लिए कोई भी आगे नहीं बढ़ता। सेक्स के भूखे भेड़ियों से घिरती-उभरती मुक्ता का सरस जीवन नीरस हो जाता है। उसकी सारी भावनाएँ मर जाती हैं। वह आगे चलकर यौन-वर्जन की समस्या का शिकार बनती हैं।

निष्कर्ष

अन्सल के आलोच्य उपन्यासों में नितान्त वासनात्मक यौनसंबंध, केवल प्रेम के लिए स्थापित यौन-संबंध, स्वार्थ के लिए व्यवसायिकृत यौन-संबंध, यौन-वर्जन आदि समस्याओं का चित्रण प्रस्तुत करके इस उपन्यासों में यौन-संबंधों के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है।

5· अवैध यौन-संबंध

विवाहोपरान्त पति या पत्नी के बाहय यौन-संबंध स्थापित होते हैं, उसे अवैध यौन-संबंध कहा जा सकता है। कुसुम अन्सल के "एक और पंचवटी" 1985 में साधवी के संबंध इस कोटि में आ सकते हैं।

साधवी का एक पतिव्रता नारी होते हुए भी पति प्रेम से वंचित रहकर कुंठित बनना, अपने पती यतीन को समझाने पर भी उसे साधवी के अंतर्मन का पता न लगना, यतीन द्वारा उसे मायके जाने की सूचना देना, यतीन के भाई विक्रम

का फ्रैक्टरी के काम के बहाने गोरखपुर चले जाना, जाते-जाते साधवी को उसके मायके छोड़ देने का संकल्प विक्रम के द्वारा करना, उसका दो दिन गोरखपुर में रहना, यतीन के भाई विक्रम का साधवी द्वारा अधिक प्रेम पाना, उसके इन्तजाम में बिना खाना खाये उसका तडफना इस स्थिति का चित्रण करती हुई अन्सलजी साधवी की भावनाओं को प्रस्तुत करती हुई कहती है - "यदि कोई निकट बैठा मेरे माथे पर फैले बालों को हटकाकर अपने गर्म जलते होंठ मेरे माथे पर न रख देता। संवेग तथा भीतर का उत्ताप अनिवार्य हो उठा मैंने बाहे फैला दी थी वह पूर्ण रूप से मुझ में एकाकार हो गया था।[57] साधवी के मन में जन्म-जन्मान्तर की प्यास लपट-लपट जल उठ रही थी।

खाना खाने के बाद अँधियारे में पूरा परिवेश सुन्न था जिससे साधवी को हलका डर लगने लगा। "विक्रम ही अचानक उठ खडे हुए, अपने दोनों हाथ उन्होंने मेरे सन्मुख फैला दिए और मैंने अपने को बिना सोचे उन हाथों के निमंत्रण में सौंप दिया जैसे उनके होने में ही मेरी सार्थकता थी। उनका चुम्बकीय अस्तित्व उस स्पर्श के सहारे धीरे-धीरे बहकर मेरे शरीर में प्रवेश कर रहा था और मैं पूरी डूब चुकी थी।"[58] विक्रम का आकर्षण, प्रेम, मुनहार, इलास्टिक की तरह खींचकर साधवी तक आया था।

वह अपनी पंचवटी में अकेली रह गई। दिन वैसा ही साधारण-सा बीत गया। शाम के समय विक्रम लौटे। खाना खाने के बाद घुमने के लिए निकले थे। सभी अवरोध हमारी इस सैर को कठिन बता रहे थे। "विक्रम की बांह लापरवाही से मेरी कमर में लिपटी थी···स्पर्श इस क्षणमौन के ऊपर तैर आया था, जैसे उस क्षण की उष्णता, उस क्षण की जीवन्तता को हम अपने भीतर उतार लेना चाहते हो।"[59] उसके स्पर्श से जैसे साधवी अपने आप तक ठहर गई थी। दोनों के बीच की दीवारे ढ़ह गयी थी।

परिणामतः विक्रम और साधवी के संबंध दृढ होने लगे। विक्रम ने उसे बांहों से घेरकर सटा लिया था। अपने होठों से साधवी के भीतर के समस्त घुटन को

पी लेना चाहते थे और अचानक उसके समझ में आया कि उसका कायान्तर हो रहा है। और वह एक प्यास बन गई है। एक ऐसी अनबुझ पिपासा जो उसे सही नहीं जा रही थी। साधवी विक्रम के हिप्नौटिक व्यक्तित्व की लपेट में गुम होती जा रही थी। बांहों का बंधन फिर कस रहा था। उसके छुअन में उसका स्पर्श सुख घोल रहा था। "मेरे पंखों पर सुख कुहासे-सा झर गया था। मन आँगन फूलों की सुंगध-सा सुवासित हो गया था और मैं उसके आल्हादकारी अस्तित्व में घुलकर अपने अस्तित्व की विशुद्ध अनुभवातीतता के उस छोर तक जा पहुँची थी। जहाँ सुख ही सुख है, आनन्द ही आनन्द और जहाँ मेरे जलकर धुआँ हुए व्यक्तित्व का वैयक्तिकरण कर रहे थे विक्रम।"[60]

साधवी के जीवन की सबसे अमूल्य रात बीत गई थी। उस रात पर तन-मन से न्यौछावर होकर एक नयी साधवी के रूप में रूपायित हो गई थी। मन का पूरा आक्रोश बह गया था। यतीन द्वारा किया गया साधवी का शून्यीकरण अब जैसे एक नये प्राण भरे शरीर में ढलकर एक उन्माद में परिवर्तित हो गया था।

साधवी-विक्रम दोनों गोरखपुर की ओर जाने के लिए निकलते हैं। दोनों ही बहुत चुप थे। गोरखपुर पहुँचने से पहले विक्रम ने साधवी का हाथ अपने हाथ में लेकर कसकर दबा कर कहा, "पर मौन स्पर्श की भाषा में बह रहा था। बूँद का भरोसा अपनी सीमा तक ही संचित है परन्तु सागर असीम है - मैंने अपनी आँखें खोलकर असीम को दृष्टि में भर लेने के हेतु सीमा को त्याग दिया था। सबसे छोटी सीमा अहंकार की है, उससे छोटा और कोई नहीं हो सकता। अहंकार छोटे-से-छोटा एक क्षीण अस्तित्व है परमाणु का विभाजन हो सकता है अहंकार का संभव ही नहीं है।"[61]

साधवी-विक्रम के अवैध-यौन-संबंध दिन-ब-दिन बढ़ने लगे। विक्रम से वह गर्भवति भी बनती है। उसने विक्रम से यौन-संबंध स्थापित करके संसार का सबसे बड़ा सुख अर्जित कर लिया है वह क्षण तथा दिन अद्वितीय रहा । "हाँ, लेकिन उस दिन भी आप हमारे लिए एक फूलों की टोकरी भेजना····वी द बेस्ट

विशस टू मदर अॅन्ड सन·····।"[62] विक्रम भयभीत रूप से उसकी तरफ देखने लगता है। साधवी यह बात विक्रमजी से नहीं बताना चाहती थी लेकिन उसका जी न रहा। "आप समझते हैं, मैं उसके लिए आपसे कुछ माँगूंगी, आपकी प्रतिष्ठा, नाम या धन ?"[63] वह गर्भवति बनने का संकेत दे रही है।

विक्रम सहज होकर कहता है - "मजे की बात है न साधवी, अपनी ही धडकन मैंने अभी-अभी सुनी है, साधवी ऐसी अनुभूति मुझे कभी भी नहीं हुई।"[64] साधवी सोच रही थी कि विक्रम को भी कष्ट हो रहा है। वह अब उससे विदाई लेना चाहती है, तब साधवी कहती है, मैं अपनी पंचवटी की अमराई से मिलने को आकुल थी। जब पहली बार यहाँ आयी थी, तब उस स्थान को एक नाम दिया था पंचवटी। उस समय अमराई पर बौर लदा था। कैसा मोहक था, उस समय का ये उपवन। "मैं एकांकिनी यहाँ निर्जन में बैठी सोचती रही, जैसे मैं वनवासिनी हूँ और यहाँ रहने आयी हूँ। तब इस पंचवटी ने कच्चे पीले बौर के ढेर सारे फूल बरसाकर मेरा स्वागत किया था। और अब यह स्थल मेरे लिए पूज्य है, अनुपम है, स्वर्ग है। मैं भी तो घर त्याग के आई थी इतनी दूर कभी न लौटने के लिए, एक तरह का वनवास ही तो है, जो मैं जी रही हूँ।"[65] यहाँ "पंचवटी" के प्रतीक के माध्यम से साधवी की स्थिति पर प्रकाश डाला है।

प्रेम मानव मन की स्वाभाविक इच्छा है। उसकी परिपूर्ती के लिए विवाह संस्था का निर्माण हुआ। विवाह संस्था के मूल में यह बात रही कि उस पीढ़ी की आनेवाली संतानों को एक नाम मिले। विवाह अधिकतर परिवार की सुविधा को ध्यान में रखकर किये जाने लगे। इसमें वैयक्तिक रूचि को कोई स्थान नहीं मिला। परिणाम यह हुआ कि "दो नितान्त भिन्न स्थितियों में पनपे, भिन्न रूचियों वाले युवक-युवती को जोड़ दिया जाने लगा। जीवन में एकात्मता न उपजा पाने के कारण विवाहित जीवन बोझ बनने लगा और इस बोझ को उतार फेंकने के लिए आधुनिक दम्पती आतुर रहने लगे। ऐसे विवाह जिनका जीवन में कोई आधार नहीं है, जो निरर्थक सिद्ध हो चुके हैं, जो केवल औपचारिक हैं उनके तोड़ देने के लिए

कानून ने सहायता की।"[66]

विवाहेतर संबंधों की बहुत-सी झलकियाँ हमें समकालीन हिन्दी उपन्यासों में देखने को मिल जाती है। कुसुम अन्सल के "एक और पंचवटी" में सामान्यता साधवी के अवैध प्रेम संबंधों के लिए साधवी यतीन को जिम्मेदार ठहराया है।

विक्रम के आकर्षण को मिटाने के लिए साधवी नें अलग घर में रहने की इच्छा प्रकट की जो एक मर्यादाशील और परम्परावादी नारी के लिए स्वाभाविक था लेकिन यतीन की ओर से स्वीकृति न मिलने पर उसके मन का बंधन टूट जाता है और वह विक्रम के आकर्षण को उसकी परिणति तक पहुँचने देती है। यहाँ वह सामाजिक नैतिकता से मुक्त होकर व्यक्तिगत नैतिकता से परिचलित होने लगती है। व्यक्तिगत नैतिकता की दृष्टि से उसके संबंध अवैध लगते हैं फिर भी अपने पति से वह संबंध तोड़ देती है। वह विक्रम की "कीप" बनकर रहती है। वह कहती है "यतीन की पत्नी बनकर नाटक जीने की अपेक्षा विक्रम की रखैल बनकर सच जीना उसे नैतिक लगता है। हालांकि कुलवधू से रखैल बनने के इस बिंदु तक पहुँचने पर वह चकरासी गई है।"[67]

प्रस्तुत उपन्यास "एक और पंचवटी" में कुसुम अन्सल ने साधवी-विक्रम के माध्यम से अवैध-यौनसंबंधों की विविध परतों को खोलकर दिखाया है। इन संबंधों का कारण भारत की परम्परागत विवाह पद्धति और पति का पथरीलापन दिखाकर व्यवस्था को ही इसके लिए जिम्मेदार ठहराया है। साधवी का एक उच्च-विद्याविभूषित विविध कला-गुणों में पारंगत होना, उसकी सुन्दरता के कारण उससे भी अधिक उम्र के विक्रम का उसकी तरफ आकर्षित होना, विक्रम का विवाहित होने के कारण साधवी को अपने भाई यतीन की पत्नी बनाना, यतीन के पथरीले स्वभाव से साधवी के मन में दाम्पत्य जीवन की उबकाई का निर्माण होना, अपनी ऊबकाई को दूर करने के लिए साधवी का कलाकारिता में डूब जाना, विक्रम के आकर्षण से दूर रहने के लिए संयुक्त परिवार तोड़कर दूर रहने की बिनती अपने पति यतीन से करना, परम्परा के दास यतीन द्वारा संयुक्त परिवार की टूटन का

विरोध करके उसे परिवार में ही रहने के लिए बाध्य करना, विक्रम के आकर्षण से साधवी का शिकार होना, बस्ती जिले के एक अलिशान बंगले में विक्रम के साथ यौन-संबंध स्थापित करके साधवी द्वारा पत्नीत्व की भारतीय नारी परम्परा को तोड़ना, देवर के साथ अवैध-यौन-संबंध जोड़कर मूल्य विघटन में साझीदारी निभाना, विक्रम से उसका गर्भवति बनना, पैदा हुए जुडवाँ बच्चों के नाम "लव-कुश" रखना, बस्ती के बंगले के परिवेश को "पंचवटी" कहकर पुकारना ये सारी बातें साधवी विक्रम के अवैध-यौन संबंधों पर प्रकाश डालती है परन्तु लेखिका "पंचवटी" और "लव-कुश" के मिथक प्रयोग से शायद साधवी का पक्षधर बनना चाहती है और इन अवैध-यौन-संबंधों के लिए समाज की विवाह संस्था एवं पति का पथरीलेपन को दोषी ठहरा कर साधवी को निरापराधी घोषित करती है और दो बच्चे की स्वीकृति के साथ यतीन द्वारा साधवी का स्वीकार समस्या का समाधान लगता है।

इस उपन्यास में साधवी प्रमुख पात्र है और पूरी कथा उसके साथ केंद्रित है। साधवी-विक्रम के यौन-संबंधों पर सोचते हुए लेखका ने दाम्पत्येत्तर संबंधों का जिक्र पेश करके विक्रम साधवी के संबंधों को दाम्पत्येतर अवैध-यौन-संबंधों की कोटि में भी ढ़ाला है और ऐसे संबंधों की कारण मीमांसा पेश की है।

"अपनी-अपनी यात्रा" 1981 में कुसुम अन्सलजी ने प्रशांत-सुरेखा के अवैध-यौन-संबंधों का चित्रण किया है। यह यौन-सबंध प्रशांत सुरेखा के विवाह के पूर्व होने के नाते अवैध कहलाए जा सकते हैं। बाबूजी के नौकर के बेटे प्रशांत का सुंदर और होशियार होना, प्रशांत का आई·आई·टी· का छात्र होना, बाबूजी द्वारा बार-बार प्रशांत की प्रशंसा करना, एक दिन सुरेखा के परिवार वालों का एक संबंधी के आमंत्रण पर वहाँ जाना, सुरेखा का अकेली घर रहना, रात्री के अँधियारे में प्रशांत का आना, मंद प्रकाश में प्रशांत को सुरेखा के दर्शन होना, प्रशांत सुरेखा को एक दार्शनिक की भाँति चिंतनशील लगना, सुरेखा का उसके निकट खड़े रहना, रात्री के मंद वातावरण में प्रशांत का सुरेखा से सटा रहना, बेसुदी के कुछ पलों द्वारा दोनों के बीच की खाई की खाई के दूर करना इन सभी घटनाओं को नजरांदाज करते

हुए लेखिका कुसुमजी ने सुरेखा की स्थिति का चित्रण करते हुए लिखा है - "हलकी विद्युत लहर प्रशांत के शरीर से निकलकर उसमें समा रही हो।"[68] कितना अचानक और अप्रत्याक्षित था सब कुछ। प्रशान्त के होंठ सुरेखा के गलों पर से उतरकर उसके होठों पर आ रूके थे कि अचानक बिजली आ गई और ऐसे लगा कि जैसे "वह प्रकाश कुछ अधिक ही चमक से भरा खिलखिला उठा हो।"[69] सकपकाकर प्रशांत ने सुरेखा को छोड़ दिया और वह भागती हुई अपने कमरे में लौट आयी।
कुछ देर बाद खिडकी से झुककर देखा तो प्रशान्त उसके हाथों से छूटी उस बुझी हुई मोमबत्ती को उठकार अपने घर की ओर लौट रहा था।

अब सुरेखा का मन प्रशान्त के बारे में सोचने लगा। उसके शरीर को एक पल की वह अद्भुत छुअन कुछ बदलाव दे गई थी। सुरेखा को लगता है कि "वह मोमबत्ती की तरह धीमे-धीमे जल रही है या एकाएक लगने लगता कि वह मोमबत्ती की तरह पिघलकर बह उठी है।"[70] मकान के आसपास की उस छोटी-सी जगह में कुछ अपने आप उगे पौधों का अंबार था, उसमें झाँकता एक अकेला मौलसिरी का पौधा फूलों से लदता खड़ा था। सुरेखा को लगता है, "प्रशान्त भी और कोई नहीं वही अकेला मौलसिरी का पौधा है। वेदबाबू की मामूली नौकरी, अपनी माँ की धुंधलाती मोतियाँ बिंद भरी आँखों के बीच फूलों से लदता मौलसिरी का पौधा है।"[71] भविष्य के बारे में सोच रही थी, कल्पना कर रही थी। हर अर्थ में बड़ा होना चाहिए, अच्छा होना चाहिए और उसके लिए मन में उठ आये इस क्षणिक आवेग को भुला देना होगा।

इस हलके नीले प्रकाश में प्रशांत के गहरे काले नेत्र खूब रंगीन सपने लिए उसे ही खोज रहे थे। सुरेखा उन रंगों को अपने उपर बिखरता छोडकर पेट के नीचे तकिया दबाएं औंधी लेट अपनी पुस्तक पढ़ने के प्रयास में थी। इतने में "प्रशांत के बेचैन हाथ अचानक सुरेखा के बालों तक आ गए थे। बीच की दूरी लांघकर उसकी उंगलियाँ सुरेखा के बालों में उलझने लगी थी। वह अपनी आँखों में एक अनोखा-सा निमंत्रण सहेज सुरेखा को देख रहा था। फुसफुसाते उसके शब्द

सुने जा सकते थे।"[72] प्रशांत सुरेखा की कामना करता है परंतु जीवन भर साथ नहीं माँग सकता क्योंकि वह नौकर का बेटा था और सुरेखा अमीर घर की बेटी। लेखिका ने यहाँ आर्थिकता की खाई को खड़ा करके प्रेम-संबंधों को पनपने नहीं दिया।

कुसुमजी ने प्रस्तुत उपन्यास में शिव-सुरेखा के यौन-संबंधों पर भी प्रकाश डाला है। शिव-सुरेखा का मद्रास में किसी केस के बहाने जाना, पहले ही दिन मद्रास के समुद्र तट पर उन दोनों का जाना, शिव की आँखें सुरेखा पर टिकना, सुरेखा को शिव द्वारा अपनी ओर मुड़ा लेना, सुरेखा की मुंदी आँखों पर शिव के गर्म होठों का घुमते रहना आदि घटनाओं के जिक्र देकर अन्सलजी ने इस धारा में सुरेखा की स्थिति का चित्रण करते हुए लिखा है - "सुरेखा का पूरा शरीर एक लहर बन गया था। सागर के तट पर टिकी हुई वह एक लहर जो हर पल हर क्षण अपने समुद्र में समर्पित होती है।"[73]

आज के यौन-संबंधों में नशापान का प्रयोग किया जाता है, प्रस्तुत उपन्यास में इसके दर्शन होते हैं। अन्सलजी ने शिव के माध्यम से इस पर प्रकाश डाला है। शिव द्वारा शराब पीना, सुरेखा द्वारा सेव के टुकड़े करना, उसका मन आश्वस्त होना, शिव की मौन की व्यावहारिकता में यौन चेतना के स्पर्श का जाग उठना, शिव के द्वारा सुरेखा को अलिंगन बद्ध करना, शिव द्वारा सुरेखा को लपेटे रहना, सुरेखा का मन मस्तिष्क सुन्न होना, बिना कुछ सोचे समझे उसका यौन भावना की मादकता में डूब जाना आदि घटनाएँ अवैध यौन संबंधों की समस्या पर प्रकाश डालती है। इन यौन संबंधों में उम्र की मर्यादा का उल्लंघन किया गया है, एक प्रतिथयश वकील के साथ अविवाहित सुरेखा के अवैध यौन संबंधों पर प्रकाश डाला है।

यहाँ अवधेश-सुरेखा के अवैध यौन संबंधों का भी चित्रण आया है। अवधेश शिव का इकलौता बेटा है, जो पाश्चात्य संस्कृति का पक्षधर है। लेखिका ने इन यौन-संबंधों पर गहराई से चिन्तन किया है।

अवधेश का सुरेखा के सौन्दर्य पर लट्टू होना, उसका सुरेखा को समझाते हुए कहना - "देखो सुरेखा, मेरी जिन्दगी का उसूल है, जो चीज पसंद है, जरूर हासिल कर लो, आई डोंट केयर - कि तुम बड़ी हो। मुझे तो बस इतना पता है कि तुम मुझे अच्छी लगती हो।"[74] अवधेश सुरेखा से उम्र के कम होकर भी इन यौन-संबंधों में एक प्रकार का खिंचाव लक्षित होता है।

सुरेखा को लगता है कि वह नया है, बच्चा है, स्त्री और जीवन दर्शन से बिल्कुल अनभिज्ञ है, ताजा खिला हुआ, सपनों में चूर, मदमस्त संगीत की तरह बहता हुआ, उस पल उसके होंठ सुरेखा के होठों पर टिक जाते हैं और विरोध में उसके हाथों को अवधेश जकड़ लेता था। कितना भिन्न था यह स्पर्श।

वास्तव में सुरेखा शिव की समर्पिता है। सुरेखा द्वारा इस बात का पता चलते ही सुरेखा के प्रति अवधेश के मन में आस्था निर्माण होती है। शिव की पत्नी मंजरी द्वारा शिव की यौन तृप्ति न होना, शिव को सुरेखा के सान्निध्य में जीवन का अन्युच्च सुख मिलते रहना, सुरेखा के घरेलु और ममत्वपूर्ण स्वभाव के कारण शिव का सुरेखा के सामने झुकते रहना, सुरेखा द्वारा सरल व्यावहारिकता से शिव के मन में अपना स्थान बनाने में सफल होना आदि घटनाओं के आधार पर अन्सलजी ने इन दोनों के अवैध-यौन-संबंधों का जिक्र देते हुए लिखा है - "सुरेखा उस देय को एक चट्टानी नींव की तरह अपने चरित्र में बसा लेना चाहती थी। बस, उस प्यार की सुगंध को भीतर भरकर वह मन के द्वार बंद कर लेना चाहती थी कि अब और कुछ भी भीतर प्रवेश न करे, उलझने साफ हो चली थी।"[75]

एक बार फिर सुरेखा उसके जीवन के सूखे हुए जल-स्त्रोत को ज्वार आए समुद्र में बदल रही थी। सुरेखा में सब कुछ ही तो मिला था। शिव को जीवन का वह सुख जिसका स्वाद मंजरी नहीं दे पायी थी, बौद्धिक स्तर पर पूरी तरह जुडकर भी सुरेखा एकाएक जैसे सरल, घरेलु ममत्व भरी भावनाएँ लिए उसके सामने खड़ी होती। "शिव के सख्त कठोर हाथ सुरेखा को भींच रहे थे। और सुरेखा भी पूरी तरह उसकी होती जा रही थी। उनके होंठ इतनी आतुरता से मिले थे

जैसे रेगिस्तान में लगी प्यास हो। सुरेखा का रोम-रोम उमड़ रहा था, अपने समुद्र को समर्पित हो रहा था। समय स्थान किसी भी बात की कोई अहमियत नहीं थी।"[76]

अपने विजयी हो आये होंठ की छाप उसके पूरे शरीर पर लगा रहा था। पता नहीं कितनी बडी थी वह प्यास, जो वह बुझा लेना चाहता था। सुरेखा चरमसुख के उन क्षणों की होश खोए जैसे सुख के समुद्र में बह रही थी।

सुरेखा शिवमय हो गयी थी, इसका यहाँ पता चलता है। सुरेखा शिव के दफ्तर की सहायक के रूप में दिखाकर डॉ॰रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं - "इस आकर्षण के तल में देह नहीं होती प्रेम होता है, रागात्मकता होती है। यह लगाव यौन संबंधों को जन्म दे सकता है, लेकिन यौन तृप्ति ही इन संबंधों का अथ और इति नहीं होती। अथ और इति होता है, पारस्परिक समर्पण। निःसंगता की अरूपा तथा अजिंत इसके उदाहरण हैं।"[77] "अपनी-अपनी यात्रा" 1981 की सुरेखा एडवोकेट शिव की जूनियर हैं। एडवोकेट शिव पत्नी तथा युवा पुत्र के होते हुए भी अकेला है। पत्नी से उसे संदेह और तिरस्कार मिला है। सब प्रकार की तृष्णाओं को समेट कर उसने अपना मन वकालत की ओर एकाग्र कर लिया है। सुरेखा उसकी एकाग्रता, स्थिरता, गम्भीरता से प्रभावित है। वह उसकी सागर-सी विशालता तथा पर्वत-सी ऊँचाई से अभिभूत है। वह शिव के प्रति कृतज्ञ भी है। सदा की उपेक्षिता सुरेखा को शिव ने काम और वेतन देकर आत्मनिर्भर बनाया है। ऐसे व्यक्ति के सुरेखा उऋण कैसे हो सकती है ? फलतः शिव के प्रति प्रशंसात्मक भाव धीरे-धीरे पूजा का भाव बन जाता है और वह उसकी सेवा में, अर्चना में अगरबत्ती की भाँति होम होते रहना चाहती है। शिव अपने प्रति सुरेखा के आकर्षण और समर्पण दोनों को जानता है लेकिन उसने कभी अनुचित लाभ उठाकर सुरेखा का भोग करने की कोशिश नहीं की। इनका संबंध मन की गहराइयों तक हैं।

लेखिका ने इस यौन संबंध का चित्रण करके इसे अवैध यौन-संबंध का एक महत्वपूर्ण पहलु माना है, जिसकी तुष्टि कामपूर्ति नहीं है। यहाँ पिताजी की

मृत्यु के बाद सुरेखा का संत्रस्त बनना, माँ की कंजुषी के कारण उपयुक्त वर प्राप्ति में संदेह उसके मन में निर्माण होना, माँ की निर्ममता के कारण सुरेखा के जीवन में यौन-संबंधों के द्वार खुल जाना, पिताजी की याद में दुःखी होना, मिन्ना के समझाने पर सुरेखा स्पष्ट कहती है - "बहुत स्वार्थी हूँ, हर संतान स्वार्थी होती है।"[78] स्वार्थी संतान नीति पर यहाँ प्रकाश डाला है।

सुरेखा के द्वारा मधुर को अपने अवैध यौन-संबंधों की जानकारी देने पर मधुर सुरेखा को समझाती हुई कहती है - "देख सुरेखा, तू इस नये रंगरूट को छोड मत। यही तेरा रेस का घोडा है। इसी पर दाव लगा दे। विवाह की उम्र से तू आगे निकल रही है। तू भावुक भी है सुरेखा, कब तक अकेली सहज नारीत्व की भावना को नकारती रहेगी ? अब अगर कोई वास्तव में प्रेम करने वाला मिला है, तो उसे इसलिए मत छोड कि वह शिव का बेटा है, उस पुरूष का जिसके प्रति तेरे मन में प्रेम जागा था। वह प्रेम नहीं था, था तो मात्र फैसीनेशन जो अक्सर टीन-एजर्स को हो जाता है, उस पुरूष के प्रति जो उनका आइडियल रहा हो।"[79] सुरेखा शिव को धोखा देना नहीं चाहती वह दिल से शिव के साथ जुडी है परंतु शिव के अंतर में शारीरिक भावना की लालसा नहीं है, इसे देखकर सुरेखा कहती है - "शिव का जो भी भाव है मेरे लिए वह और कुछ नहीं प्रेम है।"[79] मधुर सुरेखा को समझाना चाहती है कि शिव के प्रेम से तुझे केवल घुटन ही मिली है, दुःख ही मिला है। मधुर के सामने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती हुई सुरेखा कहती है - "मैं जानती हूँ, शिव ही मेरा प्रेम है और मेरी मजबूरी भी। अब अगर अवधेश के प्रति कुछ स्नेह है तो वह इसलिए कि वह बहुत कुछ शिव जैसा है, वह शिव का ही जैसा एकरूप है। नहीं तो मैं शायद अपनी जिन्दगी में उसे कोई जगह नहीं देती। अवधेश की मजबूरी यह है कि वह बहुत अकेला है और जल्दबाज इतना है कि फटाफट इस तरह छा जाता है। "तुम मेरे अपने लगाव को या जो भी है, उसे किसी रिश्ते में मत बदलो। रिश्ते जोड़ लेना तो बहुत आसान होता है, पर निभाना बहुत कठिन।"[81]

प्रेम एक प्रक्रिया है, जहाँ भावनाओं की दो लहरें मानसिक स्तर पर एक दूसरे से जुड़ती हैं। अवधेश प्रेम का अर्थ समझ नहीं पाता है। वह कहता है कि "मैं अपनी जिंदगी में तुम्हें जोड़ना चाहता हूँ। समूचा शरीर भी और मन भी। बस जब आँख खोलूँ, तुम दिखो, बंद करूं तो तुम दिखो। उसके पीछे आगे जो कुछ भी है, उसे तुम भी छोड दो, मैं भी।"[82]

सुरेखा-अवधेश के रूप में उसके सामने आयी उलझन को शिव से बता देती है। वह खुद को अवधेश के योग्य नहीं मानती वह उसे इम्याचुअर बच्चा मानती है। वह अवधेश की रपट में आना नहीं चाहती, फिर भी अवधेश उससे ब्याह करना चाहता है। कई लोगों का कहना है कि अवधेश की सहायता से सुरेखा मंजरी और शिव का बदला ले। परंतु वह बेईमानी नहीं करना चाहती। वह खुद को इतना गिराना नहीं चाहती। वह मन के साथ जीने का फैसला करती है।

निष्कर्ष

कुसुम अन्सल के आलोच्य उपन्यास "उस तक", "एक और पंचवटी", "अपनी-अपनी यात्रा" में अवैध यौन-संबंधों के विविध पहलु हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं। "उस तक" में अविवाहिता मुक्ता के सतपाल निगम, अक्षय, सागर के साथ अवैध यौन-संबंध उस पर बचपन में अनिल द्वारा हुई जबरी की कारणमीमांसा पेश करते हैं। मुक्ता अविवाहिता रहकर अपनी जिंदगी को अकेली काटना चाहती है परंतु नारी सुलभ भावुकता के कारण वह उनके साथ मजबूरी से यौन-संबंध स्थापित करती है। इस उपन्यास में अविवाहित नारी मुक्ता के यौन-संबंध, पत्नी से ऊबकाई के कारण निगम बाबू के मुक्ता के साथ यौन-संबंध, पत्नी को बीमारी से ग्रस्त अक्षय के मुक्त के साथ अवैध यौन-संबंध, तो अतिकामुकता के कारण अनिल के मुक्ता के साथ, अक्षय के मुक्ता के साथ और सागर के मुक्ता के साथ यौन-संबंध यहाँ चित्रित करके इन संबंधो के पीछे नारी जाति की मजबूरी और अर्थाभाव को स्पष्ट किया है।

कुसुमजी ने मुक्ता को आर्थिक स्वावलंबी तो बनाया है परंतु अंत में उसकी टूटनशीलता का चित्रण उसे सांसारिक सुख से मुक्ति दिलायी है और अकेलेपन

की जिंदगी को काटने के लिए बाध्य किया है। यौनावेग में वह सोचती एक है, और होता एक है। ऐसी पथभ्रांत स्थिति मुक्ता की है। इस स्थिति की शिकार होकर वह अवैध यौन-संबंधों में अटक जाती है। "एक और पंचवटी" 1985 में साधवी के अवैध यौन-संबंधो पर प्रकाश डालकर विवाहोपरान्त अवैध यौन-संबंधों की स्थिति पर चिंतन किया है। पति की पथरीली दृष्टि के कारण और समाज की सदोष विवाह पद्धति के कारण नारियों को अवैध-यौन-संबंध विवाह के उपरान्त भी स्थापित करने की मजबूरी करनी पडती है। इन यौन-संबंधों में लेखिका साधवी की पक्षधर बनी है और यतीन को पश्चातापदग्ध बनाकर उसके मन में परिवर्तन करके समस्या का समाधान ढूँढा है।

"अपनी-अपनी यात्रा" 1981 मे विवाहपूर्व सुरेखा के प्रशांत, अनिल, शिव, अवधेश से अवैध यौन-संबंध दिखाकर यह विशद किया है कि यहाँ प्रेम ने उम्र की मर्यादाओं को लांघ दिया है।पत्नी से ऊब कर शिव का कम उम्रवाली सुरेखा से संबंध इसका अच्छा उदाहरण है, तो पाश्चात्य सभ्यता में डूबा और आकर्षित चीज को अपनाने वाली प्रवृत्ति का शिकार अवधेश इसका अच्छा उदाहरण है। मुन्ना सुरेखा के यौन-संबंधों में मजबूरी है, साधवी के अवैध यौन-संबंधों में मजबूरी के साथ स्वीकृति भी है। उसकी कुंठा ने इस मार्ग को प्रशस्त किया है। रिश्ते-नाते के संबंधों को लांघकर देवर विक्रम से साधवी ने अवैध-यौन-संबंध स्थापित किये हैं।

साठोत्तरी उपन्यास लेखिकाओं ने ऐसे यौन-संबंधों का चित्रण सूक्ष्मता के साथ किया है। कुसुमजी भी इस दृष्टि में पीछे नहीं परंतु उन्होंने यहाँ अवैध यौन-संबंधों के पिछे छिपी समाजव्यवस्था पर व्यंग्य किया है।

कुसुम अंसलजी ने आलोच्य उपन्यासों में नितान्त वासनात्मक प्रेम से निर्मित यौन-संबंध, केवल प्रेम के लिए यौन-संबंध, स्वार्थ के लिए तथा व्यवसायिकृत यौन-संबंध, यौन-वर्जन, अवैध-यौन संबंध आदि प्रकार के यौन-संबंधों के विविध पहलुओं पर गहराई से सोचकर इन यौन-संबंधों के पीछे की कारणमीमांसा पर स्तुत्य चिंतन

किया है।

5· नशापान की समस्या

आज सभ्य-असभ्य लोगों में नशापान की समस्या बढ़ने लगी है। मानसिक तान-तनाव, औद्योगिकरण से निर्मित अशांति परिवेशगत दबाव आदि के परिणाम स्वरूप आज नशापान की समस्या बढ़ने लगी है। नारियाँ भी इसके लिए अपवाद नहीं हैं। कुसुमजी ने मुक्ता के माध्यम से इस समस्या पर प्रकाश डाला है। "उस तक" 1979 की मुक्ता नीना से मिलने उसके घर जाती है। नीना के कमरे में वह सिगारेट जलाकर पीने लगती है। नीना के कहने पर मुक्ता कहती है - "हां, छोड़ा नहीं है। पहले से जादा पीती हूँ, जलते अंगारे को हाथ में उठाकर धुएं के बादलों में घिरती-घिरती पूरी तरह कडवाहट में डूब जाना चाहती हूँ।"[83] अधिक मात्रा में महानगरों में नौकरी पेशा नारियाँ नशापान में चूर-चूर होती है। मुक्ता के माध्यम से इस समस्या पर दृष्टिक्षेप किया गया है। कामकाजी क्षेत्र की नारियाँ बड़े-बड़े होटलों में जाकरे शराबपान भी करती है। अपने जिंदगी का क्षणिक सुख भोगती रहती है। पुरूष के समान आधुनिक नारी नशा में चूर-चूर हो रही है। मुक्ता की द्वन्द्वग्रस्त मानसिकता मुक्ता की असहाय स्थिति ने उसे धुम्रपान तथा शराबपान की तरफ मुड़ाया है। इस स्थिति में उसे सतपाल बाबू के जिस्म की याद आती है। इन यादों से छुटकारा पाने के लिए वह स्लीपिंग पिलस का प्रयोग करके मन को शांति दिलाना चाहती है।

बड़े बड़े महानगरों में स्त्री-पुरूष साथ-साथ बैठकर शराब पीते हैं। इसी स्थिति में अपने योन-संबंध भी स्थापित करते हैं। मुक्ता–सुखेन्दु ऐसे ही स्त्री-पुरूष हैं जो साथ-साथ पीते हैं। मुक्ता से शादी के लिए इन्कार कर देने पर सुखेन्दु उदास होकर व्हिस्की का पूरा गिलास खाली कर देता है। महानगरों में पुरूष के साथ नारी भी नशापान करके अपने गम को भूलने की कोशिश करती है। इसका अच्छा चित्रण "उस तक" में देखने को मिलता है।

कुसुम अंसल के "अपनी-अपनी यात्रा" 1981 में कुसुमजी ने सिगरेट-पान की आदत पर प्रकाश डाला है। साथ ही साथ शराब पान की आदत पर भी। सुरेखा से मिलने एक महिला विलायती रंग में डूबी हुई सिगरेट पी रही थी, उसे सुरेखा द्वारा पूछने पर वह स्त्री कहती है "सिगरेट मुझे स्लिम रखता है, जब भी भूख लगती है, सिगरेट पी लेती हूँ। सिगरेट मुझे खूब रिलेक्सेशन देता है। जब भी टैस होती हूँ, सिगरेट पिया, उलझन दूर हो जाती है, दिमाग हलका हो जाता है। शिव के माध्यम से नशापान पर भी प्रकाश डाला है।

निष्कर्ष

कुसुम अन्सल के "उस तक" 1979, "अपनी-अपनी यात्रा" 1981 में नशापान की समस्या पर सोचा है। कुसुमजी ने इन उपन्यासों के माध्यम से यह विशद कर दिया है कि आज महानगरीय जीवन की दौडधूप में और आपाधापी में हर व्यक्ति अशांत नज़र आ रहा है। अपनी अशांति को शांत बनाने के लिए अमीर-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित नशापान के चंगुल में फसँता जा रहा है, नारियाँ भी इसके लिए अपवाद नहीं हैं। कुसुमजी ने महानगरों के स्त्री-पुरूषों में बढ़ने वाली नशापान की आदत पर केवल संकेत भर सोचा है।

6· **अकेलेपन की समस्या**

मनुष्य में पली लघुता की ग्रंथि से, परिवार और समाज से टूट जाने से, अतिनिराशा से अकेलेपन के एहसास की समस्या का निर्माण होता है।

कुसुम अंसल के "उस तक" 1979 में मुक्ता के अकेलेपन के एहसास की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। मुक्ता की उर्ध्वगामी इच्छाशक्ति के कारण स्वावलंबी बनने के लिए परिवार से टूटना, बचपन में अनिल की जबरी से जीवन के प्रति मुक्ता का निराश होना, नौकरी के क्षेत्र में सतपाल बाबू द्वारा उसका शोषण होना, सुखेंदु और अक्षय से विवाहबद्ध न होकर अकेली रहने का निश्चय करना, अपने अकेलेपन को काटने के लिए अक्षय की बेटी किन्नी से नाता जोड़ना, अकेलेपन की मुक्ति के लिए पत्र-पत्रिकाओं को इकट्ठा करना, सिगरेट और शराब ग्राशन करना,

बहनों के साथ तिर्थाटन के लिए जाना ये सारी घटनाएँ मुक्ता के अकेलेपन के एहसास की समस्या पर प्रकाश डालती है।

कुसुमजी के "एक और पंचवटी" 1985 में भी साधवी के अकेलेपन के एहसास की समस्या पर भी सोचा गया है। अपने पथरीले दिल के पति से साधवी का निराश होना, साधवी का कलाकार होना कलाकार के दिल की स्वच्छन्दिता के कारण अपने पति की प्रवृत्ति से उसका मेल न खाना, खाली समय में चित्रकारिता या कलाकारिता में डूबकर अपने अकेलेपन को काटना, पारिवारिक काम-धंधों में जूटकर रिक्तता को भरने का प्रयत्न करना, इस अकेलेपन से निर्मित कुंठा को देवर विक्रम से जुडकर शांति पाना, विक्रम की दुर्घटना में मृत्यु होने पर फिर अकेलेपन की समस्या का उभर उठना, यतीन का पश्चानापदग्ध होकर उसे फिर स्वीकार करके उसके अकेलेपन को कम करना आदि घटनाओं से साधवी के अकेलेपन की स्थिति पर प्रकाश पडता है। अपने अकेलेपन को काटने के लिए वह प्रकृति में रंग भरने का काम करती थी। वह कहती है - "प्रकृति मेरे द्वारा अनेक रूपों और विविधताओं से जन्म लेती है और मैं···मैं तो हूँ ही प्रकृतिजन्य प्रकृति से अभिभूत और भीतर-ही-भीतर प्रकृति से उद्दीप्त थी।"[84] उनके चित्रों में पेड, वनस्पती जड़ नहीं होते, उनमें भावनाएँ होती हैं ठीक वैसे ही जैसे किसी मनुष्य हृदय में डूब के नरम परिवेश पर छाई धुंध। उसके अनेकानेक रूप में शांति की शीतलता भरती है।

साधवी इन चित्रों में उन सवालों को उभारती अपने अकेलेपन की सभी संध्याएँ इन्हें अर्पण करती जा रही थी। "उसका इस कमरे का इतिहास दुलहन के अवगुण्ठन से आरम्भ होकर तूफानों से लड़खड़ाती नौका तक टिक आया है।"[85]

एक दिन साधवी का पुराना दोस्त रमेश मिलता है। कला तथा धार्मिकता के प्रति विचार-विमर्श होता है। सत्य के प्रति अपनी अवधारणा प्रकट करती हुई वह कहती है - "जहाँ तक आई हूँ - वहाँ है मेरे भीतर का अकेलापन शून्य···एक सन्नाटा···अभी वही खड़ी हूँ···उस शून्य ने मुझे अभी कुछ दिया नहीं है। एक रिवोल्यूशन की प्रतीक्षा है, शायद वह भीतरी विस्फोट भीतर कुछ उपजाए एक अवेयरनेस

और मैं उसी प्रतीक्षा में हूँ।"[86] यतीन कलकत्ता से रात के समय आये थे। पति-पत्नी के बीच बातचीत होती है। साधवी अपनी मानसिकता यतीन के सामने प्रकट करती है। आपके साथ मैं भी तो घूमना-फिरना चाहती हूँ, कभी यह भी सोचते हो यहाँ अकेले में मैं कैसा समय बिताती हूँ। यतीन मानने के लिए राजी नहीं है। परिवार के बीच अपने को अकेला समझना गलत है। कोई सुनेगा तो तुम्हें पागल समझेगा। "परिवार एक भीड है और भीड़ का अकेलापन और भी यातनापूर्ण होता है।"[86]

अकेलेपन की समस्या को कुसुमजी ने "अपनी-अपनी यात्रा" 1981 में भी उभारा है। सुरेखा को कुछ वर्षोपरान्त प्रशान्त मिलता है। वह कहती है कि तुम्हें देखकर बचपन की याद आ जाती है। पुराने दिन याद आते हैं। मैंने अपने भविष्य को चुन लिया है। मेरी दो हिस्सों में बाँटी जिन्दगी इस रास्ते पर चलकर ही संघिकर पाई है। "अब मन में जैसे युद्धविश्राम की सी शांति है। पर अब जब सब टूटा हुआ है मैं नार्मल हो पाई हूँ, तो पापा नहीं रहे। मेरे नाम का एक अस्तित्व उनके साथ समाप्त हो गया। मैं अब केवल सुरेखा हूँ, अकेली सुरेखा।" यहाँ सुरेखा के अकेलेपन के साहस की चर्चा है।

निष्कर्ष

कुसुम अन्सल ने प्रस्तुत समस्या को "उसतक" 1979,"अपनी-अपनी यात्रा" 1985, "एक और पंचवटी" 1981 में उभारा है। "उसतक" की मुक्ता, "एक और पंचवटी" की साधवी, और "अपनी-अपनी यात्रा" की सुरेखा के अकेलेपन की समस्या के बहुविध पहलुओं पर चिन्तन किया हैं। मुक्ता और सुरेखा का अकेलेपन अलग है और साधवी का अलग है। साधवी एक विवाहिता नारी है, जिसे अपने पति की मायूसी भरी प्रवृत्ति ने अकेलेपन की खाई में गिराया है। मुक्ता-सुरेखा दोनों अविवाहित नारियाँ हैं, जिसका अकेलापन समाज की विकृतियों के परिणामस्वरूप बढ़ गया है।

7· **नारी शोषण की समस्या**

आज समाज में घर-बाहर नारी का शोषण हो रहा है। घर के अर्थाभाव को मिटाने वाली नारी नौकरी पेशा में जुट जाती है और वहाँ भी उसका दैहिक, आर्थिक शोषण किया जाता है।

"आधुनिक नारियाँ बहुत सीमा तक स्वतंत्र हुई हैं परन्तु विशाल नारी समाज वैवाहिक समस्याओं के नीचे पीसता जा रहा है। बाल-विवाह, अनमेल विवाह, बहुविवाह, विधवा विवाह, पुनर्विवाह की समस्याएँ उनके जीवन में बनी हैं, जिससे उनका शोषण होता जा रहा है।"[89]

"नारी जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप उसका चारों तरफ से होने वाला शोषण है। आर्थिक दुर्बलता, पति की विशिष्ट मनोवृत्ति, पति के साथ सदैव झगडे, पति का दुर्व्यवहार, किसी प्रेमी द्वारा विश्वासघात, बॉस की तिरछी नजर आदि और भी कई आयाम हैं जिससे नारी का शोषण निरन्तर होता जा रहा है।"[90]

परिवार में भी देवर, ननद, सास, ससुर, जेठानी द्वारा उसका शोषण होता है।

कुसुम अन्सल के "उसतक" 1979 में नौकरी पेशा वाली नारी के शोषण पर मुक्ता के माध्यम से प्रकाश डाला है। यह समस्या आज की मध्यवर्गीय शहरी नारी की मनस्थिति को सटीक रूप से स्पष्ट करती है। यदि देखा जाय तो यह समस्या सर्वव्यापक है और हर वर्ग हर व्यवसाय की नारी इस द्वन्द को झेलती हैं। किन्तु मुख्य रूप से नौकरीपेशा नगरीय नारी की यह प्रमुख समस्या है। मूल्यों विश्वासों, मान्यताओं का आज संक्रान्तिकाल है। परम्परा से अलगाव तथा प्रगति की ओर उन्मुखता इसकी विशेषता है। इस मनस्थिति में नारी ने परम्परा और संस्कार को पूरी तरह छोड पाया है और न ही पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव को पूर्णरूपेन आत्मसात ही कर पाती है। यही शुरू होता है द्वन्द जो कुण्ठा और अनेक प्रकार की विकृत ग्रंथियों को जन्म देता है।

साठोत्तरी कालखंड में अधिनस्थ महिला कर्मचारी को महज एक शरीर समझकर उसका मनमाने ढंग से उपयोग करना, आज भी पुरूष अधिकारी अपना अधिकार समझता है। पदोन्नति का आश्वासन, भौतिक सुविधाएँ, आर्थिक सहायता आदि अनेक प्रलोभन देकर वह महिला कर्मचारी का नैकट्य-लाभ प्राप्त करने में सफल भी हो जाता है। इस निकटता के मूल में दैहिक आकर्षण होता है, अतः ऊब जाने पर वह किसी दूसरी महिला कर्मचारी पर दृष्टि गड़ाने में कोई बुराई नहीं समझता। स्पष्ट है कि "अधिकारी में आज भी सामन्तवादी प्रवृत्ति विद्यमान है जो महिला को असुरक्षित एवं अपराधबोध से ग्रस्त करती हैं।"[91]

बड़े-बड़े कम्पनी में तथा सरकारी कार्यालयों में हम देखते हैं कि नारियों का शोषण हो रहा है। वह शोषण अधिकतर अधिकारियों द्वारा किया जाता है। नारी उनके वासनाओं का शिकार बन जाती हैं। कुसुमजी के "उसतक" 1979 का उपन्यास में इस तथ्य पर गहराई से प्रकाश डाला गया है। निगम एण्ड कम्पनी में काम करते समय आर्थिक अभाव से ग्रस्त मुक्ता को सतपाल बाबू की विकृत दृष्टि की शिकार होना पडता है। उसकी तनखा बढाई जाती है। मुक्ता को सतपाल बाबू द्वारा देर तक मिटींग के बहाने रूक जाने को बाध्य करना, मिटींग के बाद उसे अपनी कार में बिठलाकर उसके शरीर पर अपना हाथ फिराना, घर-परिवार वालों की पूछताछ करना, मजबूरी से मुक्ता द्वारा विरोध न करना, धीरे-धीरे मुक्ता के सान्निध्य में सतपाल बाबू द्वारा शामें रंगीन बनाना, मुक्ता की प्रशंसा करते हुए कहना - "यू हैव लवली आइज। बडी प्यारी हो तुम मुक्ता।"[92] मुक्ता अपने कमरे में आकर सतपाल बाबू के मुँह के चेचक के दाग उसे अपनी हथेलियों पर उगते नजर आते हैं। वह घर आकर रगड़-रगड़कर हाथ धो लती है।

मुक्ता की तनखा दूसरे मास से ही साड़े-तीन सौ से बढ़ाकर पाँच सौ करना फर्निचर, परदे उसके आवास स्थान में उपलब्ध करा देना, मुक्ता को बढावा देने के कारण पूरे दफ्तर में मुक्ता का दबाव फैल जाना, मुक्ता पर खुश हुए सतपाल बाबू द्वारा एक दिन उसे अपने फार्म हाऊस पर ले जाकर उसकी इज़्जत को लूटना, ये

घटनाएँ मुक्ता के दैहिक शोषण की गवाह लगती हैं।

मुक्ता का दैहिक शोषण करने के पश्चात निगम और एक युवती के साथ संबंध स्थापित करके उसे भी अपनी वासना का शिकार बनाकर उसका भी शोषण करता है। सतपाल बाबू के इस शोषण में व्यावसायिकता के दर्शन होते हैं।

अन्त में सतपाल का साहचर्य उसे गंदे नाले में पाँव डालने के समान घिनौना लगता है। ऐश्वर्यपूर्वक रहने के लिए वह यह सब स्वीकार करती है। "मुक्ता की यह दुर्बलता आधुनिक भौतिकवादी व्यक्ति की दुर्बलता है, जो स्वार्थ सिद्धि हेतु सही लगती है नैतिक-अनैतिक की विभाजक रेखा को जानबूझकर अपने हाथों मिटा देता है।"[93] अतः मानसिक संताप या अपराध बोध के बावजूद मुक्ता परिस्थितियों की शिकार बनकर निरीह महिला के रूप में उभरकर नहीं आती बल्कि अपनी दुर्दशा के लिए किसी अंश तक वह स्वयं उत्तरदायी है।

यहाँ मुक्ता के दैहिक शोषण का अनेक स्तरों पर चित्रण है। अनिल, सुखेन्दु, अक्षय, सतपालबाबू, निगमबाबू आदी व्यक्तियों से उसका दैहिक शोषण दिखाकर मुक्ता के प्रति लेखिका ने सहानुभूति दर्शायी है।

कुसुम अन्सल का उपन्यास "अपनी-अपनी यात्रा" 1981 में संयुक्त परिवार में होने वाला बहू का शोषण मिन्ना के रूप में लेखिका ने चित्रित किया है। यह शोषण दहेज के रूप में आर्थिक शोषण के दर्शन करा देता है। मिन्ना की सास को दी हुई साडी को ट्रंक में लगी जंग के कारण सास द्वारा मिन्ना की माँ को फोन करके साडी वापस ले जाने को कहना, मिन्ना की माँ का फौरन वहाँ जाना, दाग लगी साडी के बदले में नयी साडी देना, वापस लौटते समय मिन्ना की माँ को सास द्वारा कहना - "इतना ही नहीं तो उदेश मिन्ना को मारता पीटता भी है। कोई कह रहा था कि मिन्ना की बाहों पर सिगरेट जलाने के निशान हैं।"[94]

सुरेखा मिन्ना की इस दयनीयता पर सोचती हैं। बाबूजी तथा मिन्ना की माँ भाग्य पर भरोसा करके मिन्ना के भविष्यत् के बारे में चिन्तित लगते हैं। एकाध बच्चा पैदा होने पर इस स्थिति में जरूर परिवर्तन होगा ऐसी उनकी धारणा है। परिवार के सब लोग मिन्ना के भविष्य के बारे में चिन्तित हैं। मिन्ना के परिवार

वाले सोचते हैं - "फिर भी सुखी रहे, दुखी रहे, लड़की अपने घर में ही शोभा देती है। शायद बच्चे के भाग्य से सब ठीक हो जाए।"[95]

दीवाली पर टेलीविजन माँगा था। बहुत कोशिश की विलायती मिला नहीं तो देशी खरीद कर देते हैं। उसी पर झगडा बढ़ता गया। मिन्ना के साडी में छिपी बाहें खींचती हुई माँ बोली, "देख कैसा जलाया है, लड़की को उन राक्षसों ने।"[96] मिन्ना के बाँह पर छोटे-बड़े काले-काले निशान थे। मिन्ना घबराकर बाहें समेट रही और सुरेखा क्रोध से भीतर ही भीतर उबल रही थी। सुरेखा ने फोटोग्राफर को बुलाकर मिन्ना की जली हुई बाहों के शरीर के चोटों के निशानों के कई फोटो उतरवाएँ। डॉक्टरी परीक्षा के कागज तैयार करवाए। सब लोग मना करते रहे। लेकिन सुरेखा झुंझलाती रही। उसके ऊपर जैसे गुस्से का भूत सँवार था। उसे लग रहा था कि यह सब कुछ मेरे निकट शायद इसलिए घट रहा है कि मैं आँखें खोलकर देख लूँ और अब भी न देखूं तो वह मेरी मूर्खता होगी, मेरा पागलपन। सुरेखा उसी दिन मन में निश्चय करती है कि विवाह के बंधन को सुरेखा कभी नहीं स्वीकारेगी, जितने अपमान ऊपर से गुजर चुके हैं उनके घाव जितनी क्षतिकर गए, उसे ही भरते-भरते वह यहाँ तक आ गयी है। अब यह नया घाव अपने ऊपर नहीं ओढ़ूंगी। विवाह के प्रति दूसरों के वैवाहिक जीवन को देखकर सुरेखा के मन में विरक्ति निर्माण हो जाती है और अविवाहित रहने का निश्चय करती है। यहाँ नारी-शोषण की दयनीयता पर प्रकाश डाला गया है।

निष्कर्ष

सुरेखा, मिन्ना का दहेज के परिणाम स्वरूप या आर्थिक मांगों के परिणामस्वरूप ससुराल में होने वाला शोषण देखकर आजीवन अविवाहित रहने का निर्णय लेती है। "उसतक" की मुक्ता का अविवाहित रहने का निर्णय और "अपनी-अपनी यात्रा" की सुरेखा का अविवाहित रहने का निर्णय अलग-अलग पृष्ठभूमि पर स्थित है। कुसुम अन्सल की अधिकांश नायिकाएँ अविवाहित रहने का निर्णय करती हैं, जिसका कारण सामाजिक दुर्व्यवस्था लगता है। यहाँ दहेज के परिणामस्वरूप नारी शोषण पर कुसुमजी ने गहराई से सोचा है और इसके कुफल से बचने के लिए सुरेखा को आजीवन अविवाहित रहने को बाध्य किया है।

कुसम अन्सल के आलोच्य उपन्यासों में नारी शोषण की विविध शक्लें प्रस्तुत की गयी हैं। "उस तक" की मुक्ता का दफ्तर के बॉस द्वारा शोषण, "एक और पंचवटी" की साधवी का अपने देवर तथा संयुक्त परिवार के सदस्यों द्वारा शोषण, "अपने-अपनी यात्रा" की सुरेखा का शिव तथा अवधेश द्वारा शोषण दिखाया है। ये तीनों नारियाँ उच्च विद्या-विभूषित होकर भी परिस्थितियों के चंगुल में फंसकर अपने दैहिक या मानसिक शोषण के खिलाफ क्रांति नहीं करती बल्कि मजबूरन सब सहती रहती हैं।

8. संयुक्त परिवार की समस्या

संयुक्त परिवार प्रथा भारतीय समाज की अपनी अलग पहचान है। इस प्रथा का हमारे यहाँ अनेक शताब्दियों तक चलते रहना प्रमाणित करता है कि इसमें त्रुटियों की अपेक्षा गुण ही अधिक थे। लेकिन आधुनिक काल में शिक्षा तथा विज्ञान का प्रसार, औद्योगीकरण, देश की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन, नवीन दृष्टिकोण, वैयक्तिकता का विकास आदि के कारण संयुक्त परिवार प्रथा का द्रुत गति से विघटन होने लगा है। डॉ. अर्जुन चव्हाण के मतानुसार, "आधुनिक कालीन परिस्थितियों ने इस प्रथा की उपयोगिता को न केवल चुनौती दी है, अपितु अनुपयुक्त भी साबित कर दीया है।"[97]

संयुक्त परिवार ने नारियों की वैयक्तिक आशा-आकांक्षाओं का गला घोट दिया है और नारियों को घुटन भरी जिन्दगी जीने को बाध्य किया है। कुसुम अन्सल के उपन्यास "एक और पंचवटी" 1985 में इस समस्या पर गहराई से सोचा है। साधवी-यतीन का संयुक्त परिवार में रहना, यतीन को अच्छा लगना, यतीन के आत्मनिर्भर न होने के कारण संयुक्त परिवार में साधवी का दम घुटते रहना, संयुक्त परिवार के सभी भाइयों का कामकाज के हेतु दफ्तर जाना, उनकी बिवियों का आराम के साथ गपशप तथा शॉपिंग में दिन काटते रहना, रसोई तथा बागबगीचा का पूरा काम नौकरों की सहायता से साधवी को करना, रात को खाने के टेबिल पर अपने-अपने पतियों से उनकी पत्नियों द्वारा बातें करना, साधवी का अलग खड़ी रहना, विक्रम द्वारा साधवी की फूलों की शय्या देखकर इशारे के माध्यम से उसकी

प्रशंसा करना, खाने में कुछ गडबडी हो जाने पर सभी लोग साधवी की तरफ देखना आदि सभी बातें संयुक्त परिवार से निर्मित साधवी की स्थिति पर प्रकाश डालती है। इस स्थिति का चित्रण करती हुई साधवी कहती है - "उस दिन के खाने में कुछ गडबडी हो तो सभी आँखें उठाकर मेरे चेहरे पर जम जाती हैं। जैसे मैं कोई हिसाब का रजिस्टर हूँ, जिसमें गनत "एन्ट्री" हो गयी हो।"[98] कोई गलत काम होने के कारण पूरा आरोप-प्रत्यारोप साधवी पर ही लगाया जाता था। कोई समझने की कोशिश नहीं करते।

विक्रमजी साधवी को बार-बार समझा रहे थे कि जीवन कल्पना में नहीं जिया जाता। प्रत्येक तर्क के लिए कुछ नियम निर्धारित करने पडते हैं। वह नीरा (विक्रम की पत्नी) से तलाक लेने की बात साधवी के सामने प्रकट करता है। साधवी आबबूला हो जाती है। नीरा का जीवन उसके खातिर नष्ट नहीं करना चाहती। वह यतीन के साथ रहकर ऐसे ही यातना पूर्ण जीवन बिताना चाहती है। वह कहती है - "मैं आपकी चिन्ता नहीं आपके भीतर की प्रेरणा बनकर एक सुगन्धित परिमल की भाँति आपसे जुड़ी रहना चाहती हूँ, जब भी मेरा नाम आये एक सुगन्ध का अदृश्य झोंका आपको घेर ले।"[99]

संयुक्त परिवार के विघटन की समस्या वर्तमान युग की एक भीषण समस्या है। संयुक्त परिवार में परिवार के सदस्यों को नित्य प्रति घुटन का सामना करना पड़ता है। जिसके कारण वे परस्पर घृणा एवं इर्ष्या करने लगते हैं। गृहकलह आम बात हो गई है। "अहर्निश परिवार के सदस्यों में संघर्ष होने के कारण जीवन अभिशाप्त हो जाता है। कष्टप्रद हो उठता है। इस अभिशाप्त जीवन से मुक्ति हेतु उचित मार्ग संयुक्त परिवार का विघटन है।"[100] आज संयुक्त परिवार के टूटने तथा बिखरने की स्थिति के दर्शन होते हैं।

डॉ॰ज्ञानवती अरोड़ा के मतानुसार - "पति-पत्नी संबंधों में तनाव, संतान के प्रति व्यवहार में स्नेह का अभाव, वैयक्तिक स्वार्थों में वृद्धि, परिवार से ऊब आदि कारणों से परिवार के सदस्य निकटतम संबंधों को तिलांजली देकर अलग जा बसते हैं और परिवार में विघटन आता है।"[101]

"एक और पंचवटी" 1985 में संयुक्त परिवार की एक झलक है जिसका गृहपति उस परिवार का बड़ा भाई है। "बड़े भाई विक्रमजी ने ही पूरी गृहस्थी की गाडी शुरू से खींची है,पिताजी उसके कंधे पर ही सारा भार छोडकर इस दुनिया से चले गये थे। दो बहनों की शादी की,उसके बाद मँझले भाईजी की, फिर हमारी। तो यूं सारा परिवार उनके ही बनाए रास्ते पर बिना सिर उठाए चलता जा रहा है। बड़े भाईजी जो भी कह देते हैं वह अटल सत्य बनकर ग्रहण किया जाता है।"[102]

"एक समय था जब संयुक्त परिवार का वृक्ष लहलहाता था। ज्यों-ज्यों उस वृक्ष में नयी कोंपलें और शाखाऐं निकलती थी, त्यों-त्यों उस वृक्ष की जड़े फैली ही जाती थी।"[103]

कुसुम अन्सल के "अपनी-अपनी यात्रा" 1981 में मिन्ना का विवाह उदेश के साथ होना, अपना ग्रहस्थी जीवन घुटन भरे परिवेश में बिताना, सास द्वारा मिन्ना का शोषण होना, परिवार के सभी काम मिन्ना द्वारा करना, इसके साथ अपमान, भर्त्सना के कारण उसका टूटती रहना - ये सारी घटनाएँ संयुक्त परिवार की बुराइयाँ पेश करती हैं।

निष्कर्ष

ये सभी तथ्य यह स्पष्ट करते हैं कि संयुक्त परिवार की घुटन को कुसुमजी ने स्वयं अनुभव किया है। वह यह चाहती है कि संयुक्त परिवार में व्यक्ति-विकास पर अनेक प्रतिबंध लगाये जाते हैं। कुसुमजी की विचारधारा व्यक्तिवादी होने के नाते वह संयुक्त परिवार से अपने नारी पात्रों को जुड़ाकर उसका व्यक्तित्व हनन होने नहीं देती। अतः उनके नारी पात्र साधवी, खन्ना संयुक्त परिवार के खिलाफ कदम उठाना चाहती है। इन नारियों को वह सामाजिक लांछन से दूर रखकर उन्हें आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा देती है और नारी शोषण की चक्की से हटाने का प्रयत्न करती है। इस शोषण से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने अपने नारी पात्रों को अविवाहित रहने की सलाह दी है। मुक्ता और सुरेखा इसके अच्छे उदाहरण हो सकते हैं।

९· अन्धविश्वास की समस्या

अन्धविश्वास भारतीय जनजीवन में एक अभिशाप है, जिससे समाज-विकास की गति में रोडे अटकाये जा सकते हैं और इससे अनेक मासुमों पर अन्याय भी होते हैं। कुसुम अन्सल के उपन्यास "उस तक" में इस समस्या पर सोचा गया है। "उस-तक" की नायिका मुक्ता का जन्म दो लड़कियों के बाद हुआ था। वह अपने माँ-बाप की तीसरी लड़की थी। उसके जन्म के समय माँ को "जापे" के समय हवा लग गई थी। तब उसे जाडो का दर्द बैठ गया था। सर्दियों के दिनों में मुक्ता के माँ को अधिक तकलीफ होती थी। मुहल्ले वाले तथा रिश्तेदार बार-बार कहते थे कि "तीसरी लड़की मनहूस होती है। मुक्ता का पैर अच्छा नहीं है। उसको कोई जन्म-दोष है, कोई ग्रह है। मुक्ता का गंडमूल है, जाप करना होगा।"[104] इतना ही नहीं तो बेब्बजी तो सदा ही मुक्ता का मुँह देखकर कह उठती थी, "सिरसडी, जाने कहाँ से आ गई है। मेरे बेटे के छोटे से मुँह पर तीन-तीन आ बैठी हैं।"

आज समाज में ऐसा चित्र दिखाई देता है कि किसी व्यक्ति को लड़का नहीं होता है, तो वह ईश्वर के पास मिन्नते मनाता है, बेटे को वंश का दीपक माना जाता है और बेटी को पराये घर की सम्पत्ति। लड़की का जन्म होने के उपरान्त परिवार वालों पर एक बोझ बन जाता है। उसकी ओर हीन भावना से देखा जाता है। उसका अपमान किया जाता है। शिक्षित और अशिक्षित लोगों में यह भावना दिन-ब-दिन दृढ़ होने लगी है।

मुक्ता बड़ी हो रही थी। इस स्थिति में मुक्ता की मानसिकता को सँवार ने का काम बाबूजी करते थे। इस स्थिति में वह चीड़-चीड़ी बनी, कुंठाओं, प्रताड़नाओं के बीच उसकी जीवन वेली बढ़ती जा रही थी। माँ की बीमारी बढ़ती जाती है और उसके साथ उनका क्रोध भी। "कुछ वर्ष बाद माँ ने एक बेटे को भी जन्म दिया था पर वह बचा नहीं। एक बार फिर मुहल्ले की सहानुभूति माँ को और दोष मुक्ता के ग्रहों को मिला। पर मुक्ता का जीवन टूटा नहीं, जुडा रहा। बढ़ता

रहा ।"[105] माँ ने एक बेटे को जन्म देने के उपरान्त बेटे की मृत्यु होने के कारण मुहल्ले वाले फिर मुक्ता को अभद्र कहकर शब्दरूपी कीचड़ फेंकने लगे।

मुक्ता की माँ अपनी पति परायणता को सबके आगे प्रकट करने में व्यस्त थी। सारी गली में न्यौता दे आयी कि "बाबूजी के ठीक होने की खुशी में जगराता करना है। जब वह अस्पताल में थे तभी मैंने सुक्खना की थी ठीक होकर घर आयेंगे तो माना का जगराता कराऊँगी।"[106] उसी तरह भगवती माना का जगराता बड़ी धूमधाम से किया जाता है।

अक्षय अपने युवा अवस्था में कलकत्ता की हवेली बेचकर नया घर बसाता है। तब उसकी माँ पूजा पाठ करती थी। ईश्वर का गुणगान कीर्तन तथा नामस्मरण करती थी। माँ-बेटे के बीच एक दूरी महसूस होने लगी थी। "माँ पूजा पाठ के दायरे में डूबी रहती, अक्षय इससे उदास हो जाता। माँ यदि किसी ब्राह्मण के पैर धुलाने या तिलक लगवाने को उसे रोक लेती, तो वह खीज से भर उठता। वह कहता, "क्या ढोंग है, पियक्कड और ढोंगी उस पंडित के पैर क्यों धोएँ उस लपंट को माँ घर में क्यों घुसने देती है, वह अपनी दलीलें देता पर माँ उसकी एक न सुनती।"[107] पूर्णिमा के दिन सुबह-सुबह स्नान करवा कर उसे पूजा घर में ले आती, अक्षय को फूल दे, चंदन का टीका कर सुपारी चढ़ा आदि बेकार की बातें कहती हैं जो अक्षय को पसन्द नहीं है। यहाँ अतिधार्मिकता के कारण निर्मित अन्धविश्वास पर प्रकाश डाला है।

कुसुमजी ने प्रस्तुत उपन्यास "उस तक" में भक्ति के नाम पर ढोंगबाजी पाखंडपन तथा बाह्याडम्बर करने वाली भजनी मंडली का चित्रण किया है। मुक्ता द्वारा इस बात पर प्रकाश डालने का काम कुसुमजी ने किया है। मुक्ता को पूरी भजनी मंडली भजनी भक्त न लगकर चोर उठाईगीरों की लगती थी। कोट, पैन्ट, बड़ी-बड़ी फ्लैमर्स, बैलबाटम, छाती के बटन खुले। अनावृत रीछ के बालों से भरा उनका शरीर। "लम्बे-लम्बे बालों और नये फैशन की मूंछों से आवृत्त उनका मुख भक्ति की जगह मन को वितृष्णा से भर देता था। ये भक्त है, या भगवान के दलाल

इन्हीं के बीच मुक्ति पाने आयी है मुक्ता ? न···यहाँ कुछ नहीं है, कुछ नहीं हाथ लगेगा।"[108] उन गायक लोगों के स्वर में आधुनिक फिल्मी गाने की धुंद थी। बीच-बीच में अनिल कभी भजनी या विद्या की ओर शृंगार भाव से देखता था, मुस्कराता था। उन प्रेमियों के चार-चार आँखें होती थी। एक दूसरों की ओर देखकर हँसते थे।

ढोंगी लोगों को चाय बनाने की जिम्मेदारी माँ मुक्ता पर सौंप देती है। मुक्ता को लगता है कि "इन कमबख्त भक्तों को तो चाय, की जगह मिर्चे घोलकर पिला देनी चाहिए। भगवान के नाम का खुले आम व्यापार कर रहे हैं। और कितनी पागल है जनता भी। जान बूझकर मूर्ख बन रही है।"[109] आज भी ईश्वर के नाम पर, गाँव में तथा नगरों में भजनी मंडली लोगों को फँसाते हैं और अपनी जीविकोपार्जन करते हैं। लोगों के आँखों में धूल फेंकी जा रही हैं।

निष्कर्ष

भारतीय जनजीवन में अज्ञान, अशिक्षा, धार्मिक प्रवृत्ति के कारण अन्धविश्वास की समस्याओं का निर्माण होता जा रहा है। ये लोग शकुन-अपशकुन पर भी आस्था रखते हैं। निम्न वर्ग के लोगों में धार्मिक तथा सांस्कृतिक धरोहर पर अनेक से अंधविश्वासों का निर्माण होता है। बीसवीं सदी के अंतिम चरण पर भी ये अंधविश्वास महानगरीय निम्नवर्ग में कैसे सुरक्षित है, इस पर अन्सल ने "उस तक" उपन्यास में सोचा है।

कुसुमजी ने "उस तक" उपन्यास के माध्यम से निम्न-मध्यवर्ग में स्थित अन्धविश्वास का चित्रण किया है। यहाँ ईश्वर के नाम पर ढोंग रचनेवाली भजनी मंडलियों की पोल खोली है। यहाँ मुक्ता की माँ का अन्धविश्वास दिखाया है और इस अन्धविश्वासों के खिलाफ आवाज उठाने का काम मुक्ता द्वारा किया है। प्रस्तुत उपन्यास में मुक्ता की माँ की भांति अक्षय की माँ की भी अन्धविश्वास की प्रवृत्ति पर प्रकाश डालकर इस समस्या के खिलाफ आवाज उठाने का काम अक्षय करता है। परंतु मुक्ता और अक्षय इस समस्या को अपने-अपने घर से हटाने का प्रयत्न

नहीं करते हैं इस समस्या के खिलाफ कुछ नहीं कर सकते।

अन्य समस्याएँ

नारी जीवन की समस्याओं के साथ-साथ कुसुम अन्सल ने "बढ़ती आबादी" की समस्या पर अपने उपन्यास "उस तक" और "अपनी-अपनी यात्रा" में संकेत मात्र दिए हैं। "उस तक" में मुक्ता के दिल्ली महानगर के आवास्थान के इर्द-गिर्द किताबों की दुकानें, स्वीट हाऊस, टिंबर मर्चेन्ट, शोरगुल भरे टूटे रेस्टारंट, दिन-ब-दिन बढ़नेवाली घरों की कतारे, रेशनकार्ड पर दर्ज नामावली में होने वाली बढौयी, दूध डेअरी पर लगायी गयी लम्बी-लम्बी कतारे, हररोज की आपसी लड़ाइयों आदि के माध्यम से महानगरीय बढ़ती आबादी की ओर संकेत मिलता है। "अपनी-अपनी यात्रा" में सुरेखा का छह साल के बाद दिल्ली लौट आना, स्टेशन के बाहर चारों तरफ दुकानों और बाजारों की भीड़ लगी देखना, चारों तरफ लगा भींड का दरिया देखना, आकाश को छूनेवाली लम्बी-लम्बी बिल्डिंगे देखना, यातायात के साधनों की भीड़ देखना, आदि के द्वारा सुरेखा के माध्यम से दिल्ली की बढ़ती आबादी पर कुसुमजी ने संकेत दिये हैं और बढ़ती आबादी को महानगरीय औद्योगीकरण का परिणाम माना है। यह समस्या नारी जीवन से संबंधित न होकर भी यहाँ इसका संक्षिप्त में विवरण देना अनिवार्य लगता है।

कुसुमजी ने "अपनी-अपनी यात्रा" में जातीय भेदाभेद की एक अन्य समस्या को भी स्पर्श किया है। यदु के माध्यम से इन समस्या पर प्रकाश डाला है। मिन्ना के भाई यदु का महानगर में नौकरी के बहाने जाना, वहाँ मुस्लिम जाति के लड़की के साथ रहना, इस पर उसके बाबूजी द्वारा कहना, "बेटा ईसाई लड़की घर में डाले हैं, न जाने शादी की है या वैसे ही रहने हैं।"[110] अन्य रिश्तेदारों से शादी की बातें चलाने पर यदु नाराज होकर घर से चला जाता है। पुरानमतवादी लोग वैवाहिक संबंधों में बिरादरी को छोड़कर अन्य बिरादरी वाली लड़की को मान्यता नहीं देते हैं, इसका यहाँ पता चलता है।

नि ष्क र्ष

साठोत्तरी कालखंड की महिला उपन्यास लेखिकाओं में कुसुम अन्सलजी का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अनुभूति और संवेदनाओं के साथ-साथ नारी जीवन की कक्षा-व्यथा को अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध में हमने कुसुमजी के "उसतक" 1979, "अपनी-अपनी यात्रा" 1981 और "एक और पंचवटी" 1985 आदि उपन्यासों को विषय के रूप में हमने चुना है और इन उपन्यासों में स्थित नारी जीवन की समस्याओं को तलाश ने का प्रयत्न किया है।

कुसुम अन्सलजी के इन तीन आलोच्य उपन्यासों में नारी जीवन-संबंधी अर्थाभाव की समस्या, आर्थिक स्वतंत्रता की समस्या, विवाह के कारण निर्मित आंतरजातीय प्रेमविवाह की समस्या, अविवाह की समस्या, विवाहोपरान्त तान-तनाव की समस्या, असफल विवाह की समस्या, युवती की असुंदरता के कारण निर्मित विवाह समस्या, दहेज की समस्या, यौन-संबंधों से निर्मित नितान्त वासनात्मक प्रेम से निर्मित यौन-संबंध की समस्या, केवल प्रेम के लिए यौन-संबंध की समस्या, स्वार्थ तथा व्यवसायिकृत यौन-संबंध की समस्या, यौन-वर्जन की समस्या, अवैध यौन-संबंध की समस्या, ... नशापान की समस्या, अकेलेपन की समस्या, नारी शोषण की समस्या, संयुक्त परिवार की समस्या आदि कई समस्याओं का जिक्र देखने को मिलता हैं। इन समस्याओं के साथ साथ उन्होंने, नारी जीवन से संबंधित न होने वाली बढ़ती आबादी की समस्या, जातीय भेदाभेद की समस्याओं को भी स्पर्श किया है।

वास्तव में कुसुम अन्सलजी व्यक्तिवादी उपन्यास लेखिका होने के कारण उन्होंने नारी पात्रों की मनोवैज्ञानिकता के साथ-साथ उनके जीवन की समस्याओं को प्रस्तुत किया है। व्यक्तिवादी उपन्यास लेखिका के रूप में कुसुमजी ने केवल समस्याओं को प्रस्तुत न करके उनके हल को भी ढूँढने का प्रयत्न किया है और नारी जीवन की समस्याओं के पीछे समाज को तथा सामाजिक व्यवस्था को दोषी ठहराया है।

कुसुमजी के आलोच्य उपन्यासों की नायिकाएँ मुक्ता, सुरेखा, साधवी उच्च-विद्याविभूषित है फिर भी ये सभी नारियाँ व्यवस्था का दास बनकर सब कुछ मजबूरी से बर्दाश्त करती हैं। मुक्ता, सुरेखा, साधवी नारी-जीवन के हर पड़ाव पर नये-नये अनुभव जुटाती हैं ये सारे अनुभव उनके दैहिक और पारिवारिक शोषण के प्रभावी आयाम लगते हैं। विवाहपूर्व और विवाहबाह्य यौन-संबंधों की परिपूर्ति के पीछे इन नायिकाओं की मानसिकता बड़ी प्रभावी लक्षित होती हैं। मुक्ता पर बचपन में जबरी होने पर वह विवाह के प्रति घृणात्मक दृष्टि से देखती हैं और आजीवन अविवाहित रहने का निर्णय लेती हैं। ये दोनों नायिकाएँ मुक्ता और सुरेखा अपने निर्णय पर दृढ लगती है। उनके अविवाहित रहने से यौन-जीवन की तृप्ति के लिए उन्हें कई रास्ते मजबूरी से तलाश ने पडते हैं, जिससे कई समस्याओं का निर्माण होता है।

यौन तृप्ति मानवी जीवन का एक अनिवार्य अंग है। जिसका संबंध मानसिक स्वास्थ्य से जुडा रहता है। कुसुमजी ने अपने आलोच्य उपन्यासों में यौन-संबंधों के विविध आयामों के साथ यह विशद किया है कि अविवाहित रहकर भी मित्रता के स्तर पर आज महानगरों में यौन-संबंध बड़ी मात्रा में स्थापित होने लगे हैं। जिनमें पाश्चात्य संस्कृति के दर्शन होते हैं। आज पाश्चात्य संस्कृति के अनुकरण से भारतीय यौन-संबंधों में आमूलचूल परिवर्तन लक्षित होने लगे हैं। कई यौन-संबंध केवल प्रेम के लिए, कई यौन-संबंध स्वार्थ तथा व्यवसायिकृत तो कई यौन-संबंध अवैध होते हैं। कुसुमजी ने मुक्ता, सुरेखा, साधवी के माध्यम से इन यौन-संबंधों की शक्लों को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने का प्रभावी प्रयत्न किया है।

आज महानगरीय जनजीवन में अपने अकेलेपन की घुटन को काटने के लिए और रोजमर्रा की जिंदगी से मुक्ति पाने के लिए नशापान की प्रवृत्ति नारियों में भी बढ़ने लगी है। मुक्ता के माध्यम से कुसुमजी ने इसी तथ्य पर प्रभावी ढंग से प्रकाश डाला है।

आज की नारी एकान्तप्रिय होने के कारण वह संयुक्त परिवार की दीवारों को तोड़ना चाहती हैं। संयुक्त परिवार में व्यक्ति विकास में बाधा आती है, उन्मुक्त स्वतंत्रता पर अंकुश लगवाये जोते हैं। नारियों का शोषण, संयुक्त परिवार में अधिक

होता है, इसलिए आज की नारी संयुक्त परिवार को तोड़ना चाहती हैं। "एक और पंचवटी" की साधवी के माध्यम से इस समस्या पर प्रकाश डाला है।

अर्थाभाव तथा आर्थिक स्वतंत्रता न होने के कारण आज की नारी के सामने अनेक-सी समस्याएँ निर्माण हो रही हैं। आर्थिक स्वतंत्रता की चाह रखनेवाली तथा स्वावलंबी तथा आत्मनिर्भर बननेवाली नारियों के सामने कई चुनौतियाँ,दफ्तरी माहौल में खडी होती है। बॉस की तथा सहकर्मियों की बुरी नजरों का नारियों को शिकार होना पडता हैं। कुसुमजी ने मुक्ता, सुरेखा के माध्यम से इस पर गहराई से चिन्तन किया है और मुक्ता, सुरेखा, साधवी के दैहिक और पारिवारिक शोषण की व्यथा को प्रस्तुत किया है।

कुसुमजी की विशेषता यह लगती है कि समस्याओं के माध्यम से उन्होंने पाठकों के सामने प्रश्नचिह्न खड़े न करके, इन समस्याओं के समाधान को सफलता के साथ तलाश ने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। कुसुमजी के नारी पात्र नारी मुक्ति आंदोलन से प्रभावित होकर समाज तथा परिवेश के साथ लड़ते झगडते हुए नज़र नहीं आते हैं बल्कि वे अपना रास्ता अपने आप ढूँढकर आपत्तियों में से रास्ता निकालकर आत्मनिर्भर बनना चाहते हैं। बहुत कुछ सहने की सहनशीलता के दर्शन इन नारी पात्रों में होते हैं। लेखिका ने अपने नारी हृदय की संवेदना के साथ-साथ इन समस्याओं को प्रस्तुत किया है।

संदर्भ

1· डॉ·वाय्·बी·धुमाल, साठोत्तरी हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक तुलनात्मक अध्ययन (1960-1980), पूना विश्वविद्यालय, पीएच्·डी·उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध (अप्रकाशित) 1985, पृ·183

2· डॉ·शशि जेकब, महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र·सं·1989, पृ·43

3· कुसुम अन्सल, "उसतक", पराग प्र·, प्र·सं·1979, दिल्ली, पृ·21-22

4· वही, पृ·27

5· डॉ·वाय्·बी·धुमाळ, साठोत्तरी हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक तुलनात्मक अध्ययन (1960-1980) पूना विश्वविद्यालय, पीएच्·डी·उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध, 1985, अप्रकाशित, पृ·346

6· कुसुम अन्सल, अपनी-अपनी यात्रा, सरस्वती प्र·, प्र·सं·1981, दिल्ली,पृ·27

7· डॉ·रोहिणी अग्रवाल, हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला, दिनमान प्र·, प्र·सं·1992, दिल्ली, पृ·115

8· डॉ·वाय·बी· धुमाल, साठोत्तरी हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों की प्रवृत्तिमूलक तुलनात्मक अध्ययन (1960-1980) पूना विश्वविद्यालय, पीएच्·डी·के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध, अप्रकाशित, पृ·347

9· कुसुम अन्सल, उस तक, पराग प्र·, प्र·सं·1979, दिल्ली, पृ·34

10· डॉ·रोहिणी अग्रवाल, हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला, दिनमान प्रकाशन, प्र·सं·1992, पृ·118

11· कुसुम अन्सल, उस तक, पराग प्र·, प्र·सं·1979, दिल्ली, पृ·66

12· वही, पृ·66

13· वही, पृ·66-67

14· वही, पृ·60

15· वही, पृ·60

16· कुसुम अन्सल, एक और पंचवटी, अभिव्यंजना प्रकाशन, प्र·सं·1985, दिल्ली, पृ·67

17· वही, पृ·74

18· वही, पृ·75

19· डॉ·रोहिणी अग्रवाल, हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला, दिनमान प्रकाशन, प्र·सं·1992, दिल्ली, पृ·254

20· वही, पृ·257

21· वही, पृ·258

22· वही, पृ·258

23· वही, पृ·258

24· कुसुम अन्सल, अपनी-अपनी यात्रा, सरस्वती प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1981. पृ·11

25· वही, पृ·11-12

26· वही, पृ·12

27· वही, पृ·30

28· वही, पृ·32

29· वही, पृ·53

30· वही, पृ·53

31· वही, पृ·75

32· वही, पृ·110

33· वही, पृ·123

34· वही, पृ·167

35· डॉ·वचनदेव कुमार, "अनुवादक" शोध-पत्रिका, हिन्दी विभाग, रांची विश्व-विद्यालय, अंक-3, वर्ष-1979, पृ·26-27

36· डॉ·छायादेवी घोरपडे, साठोत्तरी उपन्यासों में परिवर्तित नारी जीवनमूल्य, अप्रकाशित शोध-प्रबंध, शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर, सितम्बर 1993, पृ·84

37· वही, पृ·133

38· फ्राइड मनोविश्लेषण, अनु·देवेन्द्रकुमार वेदालंकार, सं·1985, पृ·290

39· कुसुम अन्सल, आधुनिक उपन्यासों में महानगर, अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं· 1993, पृ·132

40· कुसुम अन्सल, उस तक, पराग प्र·, दिल्ली, प्र·सं·1979, पृ·17

41· वही, पृ·18

42· वही, पृ·18

43· वही, पृ·18

44· कुसुम अन्सल, आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में महानगर, अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1993, पृ·133

45· कुसुम अन्सल, उस तक, पराग प्र·दिल्ली, प्र·सं·1979, पृ·26

46· वही, पृ·26

47· वही, पृ·27

48· वही, पृ·69

49· वही, पृ·69

50· वही, पृ·74

51· वही, पृ·90

52· वही, पृ·90

53· वही, पृ·96-97

54· कुसुम अन्सल, आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में महानगर, अभिव्यंजना प्र;दिल्ली, प्र·सं·1993, पृ·126

55· कुसुम अन्सल, उस तक, पराग प्र·दिल्ली, प्र·सं·1979, पृ·41

56· डॉ·शील प्रभा वर्मा, महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ, विद्याविहार प्र·कानपुर, प्र·सं·1987, पृ·162

57· कुसुम अन्सल, एक और पंचवटी, अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1985, पृ·53

58· वही, पृ·54

59· वही, पृ·55

60· वही, पृ·57

61· वही, पृ·58

62· वही, पृ·87

63· वही, पृ·87

64· वही, पृ·89

65· वही, पृ·90

66· कुसुम अन्सल, आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में महानगर, अभिव्यंजना प्र·दिल्ली, प्र·सं·1993, पृ·124

67· कुसुम अन्सल, एक और पंचवटी, अभिव्यंजना प्र·दिल्ली, प्र·सं·1985, पृ·119

68· कुसुम अन्सल, अपनी-अपनी यात्रा, सरस्वती प्र·दिल्ली, प्र·सं·1981, पृ·17

69· वही, पृ·17

70· वही, पृ·18

71· वही, पृ·19

72· वही, पृ·27

73· वही, पृ·81

74· वही, पृ·132

75· वही, पृ·156

76· वही, पृ·151

77· डॉ·रोहिणी अग्रवाल, हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला, दिनमान प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1992, पृ·218

78· कुसुम अन्सल, अपनी-अपनी यात्रा, सरस्वती प्र·दिल्ली, प्र·सं·1981, पृ·87

79· वही, पृ·38

80· वही, पृ·139

81· वही, पृ·141

82· वही, पृ·140

83· कुसुम अन्सल, उस तक, पराग प्रका·, दिल्ली प्र·सं·1979, पृ·45

84· कुसुम अन्सल, एक और पंचवटी, अभिव्यंजनाप्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1985, पृ·11

85· वही, पृ·12

86· वही, पृ·17

87· वही, पृ·42

88· कुसुम अन्सल, अपनी-अपनी यात्रा, सरस्वती प्र·,दिल्ली, प्र·सं·1981, पृ·98

89· डॉ·रामेश्वर नारायण "रमेश", साहित्य में नारी : विविध संदर्भ, नचिकेता प्र·,दिल्ली, प्र·सं·1990, पृ·15

90· डॉ·धुमाल वाय्·बी·, साठोत्तरी हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक तुलनात्मक अध्ययन (1960-1980) पूना विश्वविद्यालय, पीएच्·डी·उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध (अप्रकाशित), 1985, पृ·184

91· डॉ·रोहिणी अग्रवाल, हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला, दिनमान प्र·,दिल्ली, प्र·सं·1992, पृ·205

92· कुसुम अन्सल, उस तक, पराग प्रकाशन,दिल्ली, प्र·सं·1979, पृ·40

93· डॉ·रोहिणी अग्रवाल, हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला, दिनमान प्र·,दिल्ली, प्र·सं·1992, पृ·206

94· कुसुम अन्सल, अपनी-अपनी यात्रा, सरस्वती प्र॰,दिल्ली, प्र·सं·1981, पृ·123

95· वही, पृ·125

96· वही, पृ·126

97· डॉ·अर्जुन चव्हाण, राजेंद्र यादव के उपन्यासों में मध्यवर्तीय जीवन, राधाकृष्ण प्र॰,दिल्ली, प्र·सं·1995, पृ·93

98· कुसुम अन्सल, एक और पंचवटी, अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1985, पृ·22

99· वही, पृ·91

100· डॉ·शशि जेकब, महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता, जवाहर पुस्तकालय प्र॰,मथुरा, प्र·सं·1989, पृ·35

101· डॉ·ज्ञानवती अरोड़ा, समसामयिक हिन्दी कहानी में बदलते पारिवारिक संबंध, सूर्य प्र॰,दिल्ली, प्र·सं·1989, पृ·99

102· कुसुम अन्सल, एक और पंचवटी, अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1985, पृ·22

103· डॉ·शीलप्रभा वर्मा, महिला उपन्यासकारो की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ, विद्याविहार प्र॰,कानपुर, प्र·सं·1987, पृ·111

104· कुसुम अन्सल, उस तक, पराग प्र॰,दिल्ली, प्र·सं·1979, पृ·12

105· वही, पृ·13

106· वही, पृ·23

107 वही, पृ·94

108· वही, पृ·24-25

109· वही, पृ·26

110· कुसुम अन्सल, अपनी-अपनी यात्रा, सरस्वती प्र॰,दिल्ली, प्र·सं·1981, पृ·120